आद्य वक्तव्य

जैन समाजमें शासन देवताओंको पूजाके संबंधमें विवाद है। कुछ लोग उनकी पूजा योग्य मानते है कुछ लोग इसका तीव्र निषेध करते है, यहांतक कि उनके पूजकोंको मिथ्या दृष्टि भी कहनेको नहीं कतराते। वस्तुतः 'पूजा' शब्दके अनेक अर्थ होनेके कारण उसमें लोग कुछ विपर्यास करते है।

प्रतिष्ठा शास्त्रमें अनेक विधान यक्षयक्षिणोके आव्हान-पूर्वक ही हुआ करते हैं। यक्षयक्षिणोके आव्हानके बिना जो प्रतिष्ठा होगी उसे नाजायज ठहराया जाएगा क्या? इसका उत्तर संशोधक विद्वानोंसे अपेक्षित है।

अनेक स्थानोंमे यक्षयक्षिणोके चमत्कार देखे जाते हैं और जैन पुराणोंमे अनेक घटनाएं प्राप्त हैं। प्राचीन प्रतिमा-ओंके साथ भी यक्षयक्षिणी पाये जाते है, इससे यह भी स्पष्ट है कि प्राचीन कालमें यक्ष यक्षिणियोंके साथ मूर्तियां बनायी जाती थीं।

प्राचीनतम शास्त्र तिलोयपण्णत्तिमें भी यक्षयक्षियोंका उल्लेख है, अतः यह आगमप्रमाण्य-सिद्ध है। शासनदेवताओंकी स्थापना देवेन्द्र करता है, देव सामान्यसे करता है, इनमें देवेन्द्र शासनभक्ति क्यों देखता है, अन्य देवोंमें शासनभक्ति नहीं है क्या ? विचारार्ह बात है।

प्रतिष्ठा शास्त्रमें भी शासनदेवताओंको [illegible] करनेका, उनको स्थान [illegible] करनेका [illegible] है । शासन देवता भक्ति करते हैं और [illegible] है शासनदेवता भक्ति करनेवाला मोक्षगामी जीव है, उसे सम्यग्दृष्टि भी सिद्ध किया है, मिथ्या दृष्टि नहीं । शासनदेवता मुक्तिगामी जीव है, हम-आप तो मुक्तिसे बहुत दूर हैं, मुक्तिगामी जीवोंका आदर करना तो उचित ही है ।

शासनदेवता भक्तिके समर्थनमें जैनदर्शन काफी प्रमाण देता है और यह विवाद मात्र पूजा शब्दके अनेकार्थ होनेके कारण उत्पन्न हुआ है, प्रस्तुत पुस्तक लेखनमें हमने समर्थ प्रमाण शासनदेवता भक्तिके संदर्भमें दिये है, आशा है यह पुस्तक समाजमें व्याप्त इस विवादको समाप्त करनेमें सहायक होगा ।

— वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

' वर्धमान '
सोलापूर–३
१५–३–१९७९

जैनधर्ममें शासनदेवतावोंका स्थान

इस संबंधमें विचार करनेकी आवश्यकता इसलिए महसूस हुई कि आजकल अनेक विद्वान् कहलाने वाले इस संबंधमें उलट पुलट विचार प्रकट कर रहे हैं। बहुतसे लोगोंके उनके विचारोंसे भोलेभाले हृदयमें बड़ा विप्लव उत्पन्न होती है। इस संबंधके पूर्वापर विचार न करते हुए, इसे अनुष्ठानमें शासनदेव देवियोंको कुछ लोग मिथ्यादृष्टि कह देते हैं। कोई कोई सज्जन बिना संदर्भके ही आगे पीछेके श्लोकोंको छोड़कर बीचके श्लोकको उठाकर विपरीत प्रतिपादनकर अपना मतलब सिद्ध करते हैं।

कोई कोई इस विषयके प्रतिपादक ग्रन्थोंको अप्रमाण बताकर आत्मसंतुष्टि कर लेते हैं परन्तु मजा यह है कि अपने मतलबके लिए उन्हीं ग्रन्थका आधार देते हैं।

सबसे प्रथम शस्त्र इनके पास यही है कि अपने मतलबके या निर्धारित मतके विरुद्ध कोई प्रमाण जिस ग्रन्थमें हो वह अप्रमाण ग्रन्थ कह देना, मूलसंघके द्वारा वह प्रतिपादित ग्रन्थ नहीं, द्राविड़ संघका यह ग्रन्थ है, ऐसा कहना, भट्टारक

प्रणीत बता देना, इससे वे अपना विषय सिद्ध हो गया ऐसा मान लेते हैं।

इसलिए बारबार उनका कहना व लिखना रहता है कि शासन देवताओंको माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। क्योंकि वे शासन देवी देवता मिथ्यादृष्टि हैं, संसारमें मिथ्यात्वसे बढकर कोई पाप नहीं है, मिथ्यात्व का सेवन करनेवाले बहुत बडे पापी हैं। अर्थात् शासनदेवताओंको माननेवाले लोगोंको न माननेवाले कतिपय विद्वान् इस तरह गाली देकर अपने निकृष्ट हृदयका परिचय देते हैं। तत्वके संबंधमें मतभेद हो सकता है, आपने जितना समझा है वही सत्य है, अन्यकी सभी बातें असत्य हैं, ऐसा माननेवाला एकांतवादी हठाग्रही है। हठाग्रही की सारी बातें अपने आग्रह की पुष्टी के लिए ही होती है, और उसकी युक्तियां, तर्क, प्रमाण, उदाहरण सभी अपने आग्रह के पोषण के लिए ही होते है। उसके विरुद्ध युक्ति, प्रमाण, आगमपर उसकी दृष्टि नहीं जाती है। कहा भी है।

आग्रही बत निनीषति युक्तिं यत्र तत्र मतिरस्य निविष्टा
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिः यत्र तत्र मतिरेति निवेशम्।

अर्थात् दुराग्रही मनुष्यने जो पक्ष निश्चित कर रखा है वह युक्तिको उसी ओर ले जाना चाहता है। किंतु जो आग्रहसे रहित होकर निष्पक्ष दृष्टिसे विचार करना चाहता है वह युक्तिका अनुसरण करके उसके ऊपर विचार करता है व वस्तुस्वरूपका निश्चय करता है।

अतः विरोधियोंको मिथ्यादृष्टि कहते समय बहुत सोच समझसे काम लेना चाहिए। केवल आपके मतसे विपरीत है, एतन्मात्रसे वा अनुष्ठेय नहीं है, यह कथन कुछ अर्थ नहीं रखता है, जिस प्रकार शासनदेवताके विरोधी सज्जन दूसरोंको, मान-

गणधरादिक परंपरासे आगत सूत्र, ... आचार्यादिक द्वारा अच्छीतरह समझाने पर भी ... उस तत्वका समीचीन श्रद्धान न करे, एवं अपने ... छोड़े तो वह जीव उस ही समयसे मिथ्यादृष्टि है ... आगमके प्रकाशमें अपनी मान्यता मिथ्या है, ऐसा ... होनेपर भी जो अपनी मान्यता का ... नहीं करते हैं वे उसी समयसे मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

सारांश यह है कि जिनोक्ततत्वका यथार्थ ... करनेवाला सम्यग्दृष्टि है।

आगे जाकर ग्रन्थकार सम्यक्त्व मार्गणामें ... प्रतिपादन करते है।

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं
आणाये अहिगमणे सद्दहणं होइ सम्मत्तम्।

छहद्रव्य, पांच अस्तिकाय नवपदार्थ इनका ... जिस प्रकार प्रतिपादन किया है, उस ही प्रकार ... करना उसको सम्यक्त्व कहते हैं। वह सम्य... होता है, एक आज्ञासे दूसरे अधिगमसे. जीव, ... आकाश, काल, एवं पंच अस्तिकाय, और जी... बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ... ननु, नच आदि न लगाकर जिनेन्द्रदेवने ... गारतनसे यह सत्य हैं इस प्रकार विनातर्क ... जो श्रद्धान होता है उसे आज्ञासम्यक्त्व ...

इनके संबंधमें प्रमाण, नय, निक्षेपादिके ... जाता है उसे अधिगम सम्यक्त्व कहते हैं।

इस बातका समर्थन आचार्य ... होता है। जो निम्न प्रकार है।

छद्दव्वणवपयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥
दर्शनप्राभृत १९

छहद्रव्य, नवपदार्थ, पंचास्तिकाय, सप्ततत्व जो जिनशासनमे कहे गये हैं उनके स्वरूपका जो श्रद्धान करता है वह सम्यगदृष्टि जानना चाहिये।

इसी अभिप्रायका एवं आचार्य समंतभद्रके लक्षणका समर्थन आचार्य सोमदेवने किया है।

आप्तागमपदार्थानां श्रद्धानं कारणद्वयात्।
मूढाद्यपोढमष्टांग सम्यक्त्वं प्रशमादिभाक् ॥

अतरंग और वहिरंग कारणोंके मिलनेपर आप्त, आगम व तत्वोंका तीन मूढता रहित, आठ अंगसहित जो श्रद्धान किया जाता है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन प्रशम आदि गुणवाला होता है।

सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिए अंतरंग व वहिरंग कारणकी आवश्यकता होती है। अंतरंग कारण दर्शन मोहनोयका उपशम क्षय, अथवा क्षयोपाशम हैं। क्योंकि दर्शनमोहनीय सम्यक्त्वको घात करनेवाली प्रकृति हैं, जब उसका उपशम होता है तब इस आत्मामें उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो जाती है। इसके प्राप्त होनेपर जीव अपने हिताहितका विचार करनेमे समर्थ हो जाता है। सच्चे देव,गुरु,शास्त्रोंपर, उनके द्वारा प्रतिपादित तत्वोंपर अंतरंगसे श्रद्धान करता है।

उसके श्रद्धानसे कोई शक्ति उसे विचलित नहीं कर सकती, उस अवास्थामें उसे सराग सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। सांसारिक सर्व कार्योको करते हुए भी वह प्रशम संवेग, आस्तिक्य और अनुकंपा गुणसे युक्त हो जाता है।

कोई भी तीर्थंकर या अर्हत्परमेष्ठी नहीं मानता है, उस भावसे उनका कोई आदर नहीं करता है, तो मिथ्यात्व क्यों कर हो सकता है ? यही विषय विचार करनेका स्थल है ।

इस विषयका निषेध करनेवाले सज्जन यह गल्लत कर लोगोमें भ्रम उत्पन्न करते हैं कि शासनदेवतावोंको माननेवाले उन्हें तीर्थकरोंके समान मानते हैं, तीर्थंकरोंके समान उनकी पूजन करते हैं, उनसे अपने इष्टसिद्धि आदिकी अभिलाषा करते हैं, वगैरे वगैरे. परन्तु यह सब निराधार है, कल्पित है, दूसरोंके ऊपर आरोप करनेके लिए साधन बनाये गये हैं, इसका विस्तारसे निरूपण हम आगे इस ग्रन्थ मे करेंगे ।

उससे पहिले यह भी विचार करना आवश्यक है कि सम्यक्त्वके प्रकरणमें फिर यह विषय आया क्यों? निषेध करनेवाले इसके लिए कौनसा आधार पेश करते हैं। इसका भी यहांपर विचार करेंगे ।

सम्यग्दर्शनकी शुद्धिसे लिए अष्टांगोंकी जैसे आवश्यकता बतलाई,उसी प्रकार तीन मूढतावोंका अभाव होना भी आव— श्यक बतलाया गया है। तभी अमूढदृष्टि अंग की शुद्धि हो जाती है ।

तीन मूढतायें ये हैं- लोक मूढता[१] देवमूढता[२] पाखंडिमूढता[३] इस प्रकार है। इसमे देवमूढताको सामने रखकर ये लोग शासन देवतावोंके सत्कारका निषेध करते हैं, अतः उसीपर विचार करना यहां उपयुक्त है ।

इन मूढतावोंसे देवमूढताका लक्षण ग्रन्थकारोंने इस प्रकार किया है ।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसा ॥
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

इस श्लोकका सारांश यह है कि लौकिक कार्योंकी सिद्धि एवं इष्टवस्तुकी प्राप्तिके लिए रागद्वेषसे मलिन चित्तवाले देवताओंकी उपासना करना यह देवमूढ़ता है, इससे सम्यग्—दर्शनमें मलिनता आती है।

इस श्लोकमें आशावान्, वरोपलिप्सया, रागद्वेषमलीमसा यह पद मुख्य ध्यान देने योग्य है। इहलोकसंबंधी आशासे एवं कुछ वरप्राप्ति करनेकी इच्छासे यदि रागद्वेषसे संक्लिष्ट चित्त वाले देवताओंकी वे हमारा कुछ भला करेंगे इस अभिलाषासे पूजन करते है, तो वह देवमूढ़ता है।

इस संसारमें जीवोंको राज्य, संपत्ति, ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र धन, कनक, वस्त्र, आभरण, वाहन आदि सर्व पदार्थोंकी इच्छा हमेशा होती रहती है, इन वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए रागद्वेषादि से युक्त देवताओंकी उपासना करना देवमूढ़ता है।

वास्तविक देखा जाय तो राज्य, संपत्ति व भोगको कोई देते नही, यह सभी साता वेदनीय कर्मके उदयसे प्राप्त होते हैं, लाभांतराय कर्मके क्षयोपशमसे इन पदार्थोंका लाभ होता है, भोगांतराय कर्मके क्षयोपशमसे भोगोंकी प्राप्ति होती है, उपभोगांतराय कर्मके क्षयोपशमसे उपभोग्य सामग्रियोंकी प्राप्ति होती है, वस्तुस्थिति जब ऐसी है तो पूर्वार्जित कर्मके अनुसार फलकी प्राप्ति होती है, तब वे देवी देवताये न हमें इन पदा—र्थोंको देते हैं, और न इनका अपहरण करते हैं। इस जगत्में हमे अनेक बंधु मित्र, वैद्य, वनस्पति आदि अनेक वस्तुओंसे उपकार अपकारकी क्रिया घडती है। वस्तुतः ये सब निमित्त मात्र हैं, परन्तु अपने कर्मके (निमित्तसे) अनुसार पुण्यपाप कर्मोंके उदयसे इष्टानिष्ट फलकी प्राप्ति होती हैं। उस फलके समयमें हम उन निमित्तोंको भी उसके कारण मान लेते हैं, क्योंकि उनको निमि-

त्ता भी सहायिका हैं, हम कह देते हैं कि आपकी कृपासे हमारा यह कार्य हुआ है। अतः ऐसा कहना अनुचित नहीं हैं।

तब तो श्रावक चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, पद्मावती आदि शासन देवतावोंकी उपासना करते हैं, वह भी देवमूढता होगी ? ऐसी शंका कोई भी करेंगे, उनका उत्तर भी श्लोकमें ही दिया गया है। यदि ऐहिक इष्टार्थकी सिद्धिकी आशासे, वर प्राप्त करनेकी इच्छासे यदि देवतावोंकी उपासना की जायगी तो वह देवमूढता है। यदि वे शासनके भक्त हैं, प्रभावक हैं. जिनेन्द्रभक्त हैं यह समझकर उनका आदर किया जावे तो वह देवमूढता नहीं हो सकती है. रत्नकरन्ड श्रावकाचार के टीका-कार आचार्य प्रभाचन्द्र देवके सामने भी यह शंका उपस्थित हुई होगी. उन्होने अपनी टीकामें उसका स्पष्टीकरण कर दिया है, यथा—

"नन्वेवं श्रावकादीनां शासनदेवतापूजाविधानादिकं सम्यग्दर्शनम्लानहेतुः प्राप्नोतीति चेत् एवमेतत् यदि वरोपलिप्सया कुर्यात्, यदा तु शासनासक्तदेवतात्वेन तासां तत्करोति तदा न म्लानहेतुः, तत् कुर्वतश्च दर्शनपक्षपाताद्वरमयाचितमपि ताः प्रयच्छन्त्येव तदकरणे चेष्टदेवताविशेषात् फलप्राप्तिर्निर्विघ्नतो झटिति न सिद्ध्यति न हि चक्रवर्तिपरिवारापूजने सेवकानां चक्रवर्तिनः सकाशात् तथा फलप्राप्तिदृष्टा"

यहांपर टीकाकार शंका उठाते हैं कि यदि ऐसा है तो गृहस्थोंको शासनदेवतादिका पूजाविधान भी सम्यग्दर्शनकी मलिनताका कारण हो सकता है, उस स्थितिमें आचार्य कहते हैं कि अवश्य। यदि वह वरकी अभिलाषासे की गई पूजा हो तो सम्यग्दर्शनकी मलिनताका कारण है, यदि वे जिनशासनके भक्त हैं, इस दृष्टिसे उनका सत्कार किया जाता है तो उसमें सम्य-

स्वर्दान की कोई सम्भावना नहीं हो सकती है अथवा यह सम्य-
ग्दर्शनके दूषणमें कारण नहीं है। जिनेन्द्रभक्त समझकर उनका
आदर करनेपर उनके प्रति अनुरागसे सम्यक्त्व दूषित न करनेपर
भी वे इष्टार्थ की पूर्ति करनेमें सहायक होते हैं। इस प्रकार
उनका आदर न करें तो शीघ्र फल प्राप्ति नहीं भी हो सकती
है। चक्रवर्ति से यदि हमें कोई फलप्राप्ति करनी हो तो
चक्रवर्ति के सेवकपरिवारको प्रसन्न किये बिना फल प्राप्ति नहीं
हो सकती है। इसलिए जिनेंद्र शासनके वे भक्त हैं। ऐसा
समझकर बिना किसी अभिलाषासे उनका आदर करनेपर इसमें
देवमूढ़ता का दोष नहीं है। इस श्लोकसे स्पष्ट ध्वनित होता है।
तथापि लोग आचार्य समंतभद्रके इसी श्लोक को सामने लाकर
शासन देवतावोंकी उपासना को देवमूढ़ताकी श्रेणीमें ढकेल देते
हैं। यह लोगोंकी आंखोंमें धूल झोंकना है। इसमें पक्षपातकी
क्या आवश्यकता है, श्लोकके हृदयको हम और आपकी अपेक्षा
टीकाकर आचार्य अधिक अच्छी तरह जान सकते हैं।

पंचाध्यायीकार देवमूढ़ता का लक्षण इसी प्रकार प्रति-
पादन करते हैं।

अदेवे देवबुद्धिः स्या[...]
अगुरौ गुरुबुद्धिर्या[...]

अदेवमें देव बुद्धि[...]
अगुरुमें गुरु बुद्धिका होना [...]

इस व्याख्यासे भी [...]
मूढता नहीं हो सकती है [...]
बुद्धि अदेव में देवत्व की [...]
ही देव [...]मझते हैं, निर्ग्रंथ [...]
धा[...] प्रकारके आमोद[...]

को सदगुरु कभी नहीं कहते हैं। भगवान् अर्हत्परमेश्वरके द्वारा प्रतिपादित तत्वको ही आगम कहते हैं। उनके द्वारा प्रति-पादित तत्वको ही धर्म कहते हैं। शासनदेवतावोंको अर्हंत मानकर उपासना नहीं करते हैं। शासनदेवतावोंको शासन-भक्त समझकर ही आदर करते हैं, ऐसी स्थितिमें लोकमूढता या देवमूढता क्यों कर हो सकती है, इसे सुज्ञ विचारशील बंधु सोच सकते हैं।

इसलिए देवतामूढताका स्पष्टीकरण करते हुए वृहद्द्रव्य-संग्रहके टीकाकार वरोपलिप्सया व रागद्वेषमलीमसाः, पदोंका स्पष्टीकरण करते हुए लिखते है कि-

"ख्यातिपूजालाभरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रराज्यादि-विभूतिनिमित्तरागद्वेषोपहतार्त्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचंडिकादि-मिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीवस्तद्देवता मूढत्वंभण्यते"

यहां ग्रन्थकारने स्पष्ट लिखा है कि ख्याति, लाभ, पूजा, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री, राज्यादि विभूति में निमित्त रागद्वेषसे युक्त आर्तरौद्रध्यानसे परिणत क्षेत्रपाल चंडिकादि मिथ्यादेवतावोंकी जो पूजा की जाती है वह देवतामूढत्व है। इसमें न तो शासनदेवतावोंके सत्कारका प्रश्न है, और न शासनदेवतावोंका संबंध ही है। ऐहिक फलकी अपेक्षासे जो मिथ्यादेवतावोंकी उपासना करते हैं उनका यह कार्य देव-मूढत्वमें आता है, यहां क्षेत्रपाल चन्डिका आदि मिथ्या देवतायें हैं, यह ग्रन्थकारने स्पष्ट किया है।

शासनदेवता मिथ्यादेवता नहीं है, क्षेत्रपाल नामक, चन्डिका नामक मिथ्यादेवता हैं, उनकी पूजा करना यह मिथ्या है, इसे कौन इनकार कर सकता है?

तात्पर्य यह है कि देवमूढता का कथन करते हुए जिन देवताओंकि पूजनका निषेध किया है, शासनदेवताओंका [illegible] रका नहीं, शासनदेवताओंको भी कोई सहारा ग्रहण [illegible] भी यथाविनय, आशावान् इन पदोंपर लक्ष्य देना चाहिं परकी अभिलाषासे एवं गृहीत मिथ्यात्वसे पूजादि की अभि-लाषासे उनकी उपासना न करे। शासनभक्त होनेके [illegible] उनका सत्कार करे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है?

अतः इस प्रकरणको निम्नप्रकारसे विभक्त कर [illegible] विचार करेंगे जिससे विषयका अच्छीतरह स्पष्टीकरण [illegible] जावेगा। तत्संबंधी सारी शंकाओंका भी निराकरण हो जावेगा

हमारा विचारक्रम निम्नलिखित प्रकार रहेगा।

(१) पूजा शब्दका शास्त्रीय अर्थ क्या है? शासनदेवोंकी पूजामें भगवान् अर्हंतकी पूजामें क्या अन्तर है?

(२) शासनदेवताओंके संबंधमें जैनागममें कहां [illegible] उल्लेख आया है? उनका विवेचन.

(३) शासनदेव क्या है? वे सम्यग्दृष्टि होते हैं इस संबंधमें प्रमाण. अतः उनका आदर होना चाहिये।

(४) शासनदेवताओंके प्रभावके कुछ उदाहरण.

(५) उनके समादरका ग्रन्थोंसे समर्थन व प्रमाण.

(६) विरोधियों द्वारा उपस्थित युक्ति और आगम प्रमाणोंपर विचार. जिससे विषयका विपर्यास किस प्रकार किया जाता है, यह लोगोंको मालुम हो जाय.

(७) शासनदेवता सत्कार मिथ्यात्व नहीं है।

(८) कुछ आवश्यक व संबंधित विषय

(९) उपसंहार

इस क्रमसे ही हम विषयका स्पष्टीकरण करेंगे जिससे स्वाध्यायप्रेमियोंको विषयका हृदय समझनेमें सहूलियत होगी.

(१) पूजा शद्बका क्या अर्थ है ?

यह सब विवाद पूजा शब्दके अर्थको ठीक न समझनेके कारण उपस्थित हुए हैं। पूजा करनेका अर्थ अष्टद्रव्यसे अरहंत भगवंतकी जैसी पूजा की जाती है उसीप्रकार अन्य देवीदेवता-वोंकी भी की जाती है, इस तरह लेनेके कारण उपस्थित होते हैं। शासनदेवतावोंकी पूजा करनेवाले कोई भी ऐसा अर्थ नहीं करते हैं, शासनदेवता—पूजाका विरोध करनेवाले मात्र उस प्रकार अर्थकर लोगोंपर व्यर्थ आरोप करते हैं।

लोकमें हमसे जो गुणोंसे श्रेष्ठ हैं ऐसे भगवान्, गुरु, माता पिता, ज्येष्ठबंधु, वृद्धजन आदि हमारे लिए पूज्य होते हैं, अर्थात् उनकी हम पूजा करते हैं. उन सबके सामने आने—पर हमारे हृदयमें एकसदृश पूजाके भाव उत्पन्न नहीं होते हैं, जैसे जैसे हमारे लिए वे पूज्य हैं उसी प्रकारके परिणाम हमारे हृदयमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु सबके लिए पूजा सामान्य शब्दका ही प्रयोग किया गया है. इसका सीधा अर्थ है कि पूजा तो अवश्य करें, परन्तु यथायोग्य. पूज्य पात्रको देखकर परिणाम भी उसी प्रकार होता ही है। उदाहरण के लिए हम यहांपर एक विषय उपस्थित करते हैं। पात्रोंके तीन भेद है, उत्तम, मध्यम, व जघन्य. इन तीनों पात्रोंको नवधाभक्ति करनेका विधान ग्रन्थकारोंने किया है। यथा—

प्रतिग्रहोच्चासनपाद्यपूजाः प्रणामवाक्कायमनःप्रसादाः ।
विधाविशुद्धिश्च नवोपचाराः कार्या मुनीनां गृहमेधिभिश्च ॥
दानशासन-वासुपूज्य १४

इसमे पूजा शब्द आया है, अर्थात् तीनों ही पात्रोंकी पूजन करना आवश्यक हैं। क्या तीनों ही पात्रोंकी पूजन एकसरीखी हो सकती है या होगी? कभी नहीं. परिणाम एकसरीखा नहीं

रह सकता है,इस दृष्टिसे पूजा सामान्यका प्रयोग होनेपर भी शासनदेवतावोंकी पूजामें एवं अर्हत्पूजाके परिणाममें अन्तर है। यहां तो मंत्र व क्रियामें भी अन्तर है, ऐसी सामान्य शब्दका अर्थ लेकर विवाद खडा कर देना उचित नहीं हैं।

दूसरी वात पूजा शब्दके अनेक अर्थ हो सकते हैं। इसलिए पूजा शब्दका प्रयोग एकसा करनेपर भी प्रकरण गत विषयको लेकर तदनुकूल अर्थ करना यह बुद्धिमत्ता है. शास्त्रोंमें जो पद आये हैं उनका संदर्भगत अर्थ करना समुचित है. यथा सैंधव शब्दका अर्थ लवण भी होता है, घोडा भी होता है. भोजन करते समय किसीने सैंधव को मांगा तो घोडा लाकर खडा कर देना उचित नहीं हो सकता है। भोजनोपरांत कपडा पहनकर सज्ज होकर वाहर जाने के लिए निकाला तो सैंधवकी अपेक्षा की, तो क्या उस समय लवण लाकर दे दिया जाय तो क्या विवेकका दर्शन हो सकता है? इसी प्रकार पूजा शब्दके अर्थमें प्रकरणगत विषयका ध्यान रखना चाहिये।

अब हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि पूजा शब्दका एक अर्थ नहीं है, अनेक अर्थोंमें वह पद प्रयुक्त होता है। इस विषयको जानने के लिए अनेक कोषगत अर्थोंको जानना उपयुक्त होगा, हमारे वाचक ध्यानपूर्वक उन अर्थोंका अवलोकन करें।

हमारे सामने जो कोष उपलब्ध हैं उनसे ही हम पूजा शब्दके अर्थपर प्रकाश डालते हैं।

पद्मचंद्र कोष, पृष्ठ संख्या २८४

पूजा:- (स्त्री) पूज+अ. अर्चन 'ल्युट्' पूजनम्
(न) इत्यादत.

अमरकोष:- द्वितीयकांड श्लोक ३४
पूजा नमस्यापचितिः सपर्याचार्हणाः समाः ॥

पूजा, नमस्या, अपचिति, सपर्या, अर्चा, अर्हणा, ये पूजाके पर्यायवाची, शब्द हैं। इसमें नमस्कार करनेका भी नाम ा कही गई है, अपचिति, सपर्या, अर्चा, अर्हणा, पूजाके ही चक हैं।

(संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' अलाहाबाद प्रकाशनमें अपचिति ादि शब्दोंका यह अर्थ दिया गया है।

अपचितिः- अनेक अर्थोके साथ, क्षतिपूरणं व पूजन यह अर्थ भी दिया गया है।

अर्चाः- पूजा, श्रृंगार, पूजन करनेकी मूर्ति,

अर्हणाः- सम्मान, प्रतिष्ठापूर्ण व्यवहार

सपर्याः- पूजन, अर्चन, सेवा, परिचर्या,

इसी कोपमें पूजा शब्दका अर्थ निम्न प्रकार किया दिया गया है।

पूजनः—अथवा पूजः— पूजना, पूजन करना, सम्मान करना, सम्मानपूर्वक स्वागत करना,

हिंदीबालबोधकोषः-भार्गवकृत, वाराणसीप्रकाशन पृ. २४१

पूजाः-(सं. स्त्री)पूजन, अर्चन, आराधना, आदर, सत्कार.

इसी प्रकार और भी देखिये।

प्रामाणिक हिंदी कोष वाराणसी प्रकाशन पृ. नं.७२०

पूजाः- (स्त्री)(सं):- १ वह कार्य जो ईश्वर या देवी देवताको प्रसन्न या अनुकूल करनेके लिए श्रद्धा व भक्तिपूर्वक किया जाय. २. किसी देवी देवतापर जल फूल आदि चढाकर या उनके आगे कुछ रखकर किया जानेवाला धार्मिक कार्य, अर्चा.

ओं ह्रीं गोमुखादि यक्षदेवता अत्र आगच्छत, आगच्छत, तिष्ठत तिष्ठत अत्र मम सन्निहिता भवत भवत इति संवौषट्

पूजाक्रम

सुरभिजलसुगंधैरक्षतैपुष्पवासै—।
इचरुभिरमलदीपैर्धूपकैःसत्फलैश्च ।
युवतिपरिजनांगान् शस्त्रवाहप्रभूषैः ।
अनुदिनमहमंचे यक्षदेवान् समेतान् ।।

श्री गोमुखादि यक्षाः, इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गंधं, अक्षतान्, ां, दीपं, धूपं, चरुं, बलि स्वस्तिकं यज्ञभागं दद्महे, प्रति-ग्रतां प्रतिगृह्यतां-स्वाहा

इन दोनों उदाहरणोंसे हमारे वाचक अच्छीतरह समझेंगे अर्हत्परमेष्ठीको पूजामें एवं शासनदेवतावोंकी पूजामें क्या न्तर हैं। जब उनके विधि मंत्रादिक में अन्तर है तो आदरमे अन्तर है ऐसा अर्थ स्पष्ट सिद्ध होता है। इसलिए वार वार भ्रम उत्पन्न किया जाता है कि शासनदेवोंकी पूजा जिने—रोंकी पूजाके समान की जाती है। यह कहना असत्य है, स प्रकारका न आगम है और न लोग करते ही हैं।

उपर्युक्त प्रकरणमे हमने मंत्रविधान का अन्तर दिया है। सी प्रकार मुद्रा आदर आदिमें भी अन्तर हैं। जब तीर्थकरोंके ार शासनदेवीदेवतावोंके समादरमें अन्तर हैं तो उनको एक ाननेका दोपारोपण क्यों किया जाता हैं? विना कारण किसीके प्रति आरोप नहीं करना चाहिये, और न भ्रम उत्पन्न रना चाहिये।

—00—

दोनोंकी पूजामें अंतर

शासनदेवतावोंकी पूजा व अर्हत्परमेष्ठी, तीर्थंकर आदि पूजाकी विधि, मंत्र, मुद्रा, आदिमें भी अंतर है। इसे भी जानना आवश्यक है।

हम उदाहरणके लिए एक पूजाका यहां उल्लेख करते हैं। अर्हत्परमेष्ठीकी प्राचीन पूजा इस प्रकार है।

अर्हत्परमेष्ठी पूजा

आव्हायाम्यहमर्हंतं स्थापयामि जिनेश्वरं।
सन्निधीकरणं कुर्वे पंचमुद्रांकितं महे ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर, अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ, अर्हत्परमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं—

इस प्रकार आव्हान स्थापना सन्निधीकरण करनेके बाद जलादि अष्ट द्रव्योंसे पूजा की जाती है, वह भी देखिये।

शशांकपादशीतलं सुवृत्तचित्तनिर्मलम्।
जिनेन्द्रपादयोरलं प्रपातयाम्यहं जलम् ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं अनंतानंतज्ञानशक्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा। इस प्रकार मंत्र कहकर जलका अर्पण किया जाता है।

अब शासनदेवतावोंकी पूजाके क्रमको भी देखिये। यह भी प्राचीन पूजा संग्रहसे ही उध्दृत किया जा रहा है।

यक्षान् यजामो जिनमार्गरक्षान्।
दक्षान्सदा भव्यजनैकपक्षान्।
निर्दग्धनिःशेषविपक्षकक्षान्।
प्रतीक्ष्यमत्यक्षसुखे विलक्षान् ॥

ओं ह्रीं गोमुखादि यक्षदेवता अत्र आगच्छत, आगच्छत, अत्र तिष्ठत तिष्ठत अत्र मम सन्निहिता भवत भवत इति संवौषट्

पूजाक्रम

सुरभिजलसुगंधैरक्षतैपुष्पवासै—।
इचरुभिरमलदीपैर्धूपकैःसत्फलैश्च ।
युवतिपरिजनांगान् शस्त्रवाहप्रभूषैः ।
अनुदिनमहमर्चे यक्षदेवान् समेतान् ॥

श्री गोमुखादि यक्षाः, इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गंधं, अक्षतान्, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं दद्महे, प्रति- गृह्यतां प्रतिगृह्यतां-स्वाहा

इन दोनों उदाहरणोंसे हमारे वाचक अच्छीतरह समझेंगे कि अर्हत्परमेष्ठीकी पूजामें एवं शासनदेवतावोंकी पूजामें क्या अन्तर है। जब उनके विधि संत्रादिक में अन्तर है तो आदरमें भी अन्तर है ऐसा अर्थ स्पष्ट सिद्ध होता है। इसलिए बार बार यह भ्रम उत्पन्न किया जाता है कि शासनदेवोंकी पूजा जिनेश्वरोंकी पूजाके समान की जाती है। यह कहना असत्य है, उस प्रकारका न आगम है और न लोग करते ही हैं।

उपर्युक्त प्रकरणमें हमने मंत्रविधान का अन्तर दिया है। इसी प्रकार मुद्रा आदर आदिमें भी अन्तर हैं। जब तीर्थंकरोंके और शासनदेवीदेवतावोंके समादरमें अन्तर है तो उनको एक माननेका दोषारोपण क्यों किया जाता है? विना कारण किसीके प्रति आरोप नहीं करना चाहिये, और न भ्रम उत्पन्न करना चाहिये।

—००—

पूज्यपूजक भाव.

अब यहांसे [illegible] यह भी [illegible] कि [illegible] पूज्यपूजक भाव कहां कहां होता है। [illegible] दो प्रकारकी होती है, एक लौकिक व दूसरी लोकोत्तर. लौकिक दृष्टिसे [illegible] संसारमें पूज्य कौन होते हैं, इसका विचार किया जाना चाहिये।

संसारमें अपनेसे गुणोंकी अपेक्षासे श्रेष्ठ हों, अधिकारकी अपेक्षा अधिक हों, योग्यताकी अपेक्षा बढ़कर हों, वह पूज्य या सन्मान्य माने जाते हैं इसी दृष्टिसे मातापिता, पुत्र, गुरु, शिष्य, ज्ञानी, अज्ञानी, श्रीमंत गरीब, दाता एवं याचक, सबल निर्बल, आदि भेद किये जाते हैं, यदि हम किसी पदार्थ की इच्छा करते हैं, वह पदार्थ जिसके पास हो तो वह पूज्य है, हम पूजक हैं, अथवा हम याचक हैं, वह दाता है। इसी प्रकार माता पिता भी हमारे लिए पूज्य हैं, हम उनके पूजक हैं. उपर्युक्त विवेचनसे यह अच्छीतरह समझना चाहिये पूज्य पूज्यक भाव जहांपर भी हो, वहां अष्ट द्रव्योंसे भगवंतके समान ही पूजा की जानी चाहिये, ऐसा अर्थ लेना गलत होगा। कोई माता पितावोंका सम्मान अष्टद्रव्योंसे पूजाकर नहीं करते हैं। आदर करते हैं, उनकी आज्ञा मानते हैं। उनकी सेवा करते हैं, सुश्रूषा करते हैं, यही उनकी पूजा है, व्यवहार में इस पूजा के द्वारा इच्छित फलको भी प्राप्त करते हैं। यह भी हम देखते हैं।

मातापितावोंकी पूजासे सहज स्नेहकी प्राप्ति होकर पुत्रकी नानाप्रकारसे हितकांक्षणा की जाती है, गुरुवोंकी पूजा करनेसे निर्व्याज विद्याप्रदान किया जाता है, गुणगुरुवोंके सम्मानसे नाना प्रकारके गुणोंकी प्राप्ति होती है तो ऐसी पूजासे ऐहिक फलकी प्राप्ति होती है। यह सब व्यवहारनयके आश्रयसे है।

निश्चयनयसे कोई देनेवाले और लेनेवाले नहीं है, वहांपर लेने देनेका व्यवहार ही नहीं है, परन्तु व्यवहारसे उसे मानना ही पडता है, इसी बातको लक्ष्यमें रखकर भगवान् अकलंकदेवने राजवार्तिक में स्पष्ट लिखा है कि:—

शरणं द्विविधं, लौकिकं लोकोत्तरं च, तत्प्रत्येकं त्रिधा, जीवाजीवमिश्रकभेदात्, तत्र राजा देवता लौकिक जीवशरणम्, पंचगुरव: लोकोत्तरं जीवशरणम्।

अर्थात् शरण दो प्रकारका है, एक लौकिक व लोकोत्तर. वह प्रत्येक तीन प्रकारसे विभक्त है, जीव, अजीव, जीवाजीवके भेदसे। उसमें राजा, देवता (शासनदेवता) लौकिक जीवशरण है, पंचपरमेष्ठी लोकोत्तर जीवशरण है।

इस प्रकार लौकिक शरणमें शासनदेवतावोंका ग्रहण किया है, पंच परमेष्ठियोंको लोकोत्तर जीव शरणमें ग्रहण किया गया है।

शासन देवता आदिको सन्मान करनेसे वे प्रसन्न होकर पूजकको कुछ दे भी सकते हैं। परन्तु लोकोत्तर शरण जो पंच परमेष्ठी हैं वे कुछ भी नहीं दे सकते हैं। इस संबंधका भी विचार यहांपर अप्रस्तुत नहीं हो सकता है। क्योंकि पूज्यपूजक भावमें यह अर्थ भी अंतर्निविष्ट रहता है।

क्या भक्तिसे भगवान् कुछ देते हैं ?

इस संबंधमें आचार्य समंतभद्र कहते हैं कि:—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवांतवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥५७॥
स्वयंभूस्तोत्र

भगवान् वीतरागी होनेसे कुछ देते लेते नहीं हैं. इसी बातको समंतभद्र कहते हैं।

[illegible] ... कार्यों की सिद्धि करते हैं, अनेक आचार्योंने इन शासनभक्त देवोंको प्रसन्न कर जैनधर्मकी प्रभावना की है।

आचार्य इन्द्रनन्दि मुनि जो सं. १४६० में हुए उन्होंने उनके द्वारा निर्मित 'ज्वालामालिनीकल्प' में धर्मप्रभावनाके लिए शासनभक्त देवोंकी उपासना करनेका विधान किया है, यथा:—

सम्यग्दर्शनशुद्धो देवार्चनतत्परो व्रतसमेतः।
मंत्रजपहोमनिरतो नालस्यो जायते मंत्री ॥३०॥

मंत्रकी सिद्धि करनेवाला मानव सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हो, मंत्र-अधिष्ठात्री देवोंके अर्चनमें तत्पर हो, व्रतनिष्ठ हो, मंत्र, जप, होम आदि कार्यमें रत हो, आलसी न हो, वही यथार्थ मंत्रसाधक हो सकता है।

इसी प्रकार सं. १४३९ मे मल्लिषेणाचार्य नामक आचार्य हुए हैं, जिन्होने मंत्रशास्त्रपर अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है।

उन्होने भी जैन धर्मकी प्रभावना के हेतु इन शासन देव देवियोंकी आराधना करनेके लिए कहा है।

मल्लिषेण कृत ज्वालिनीकल्प देखिये।

परिमितभोजी शौचः सम्यग्दृष्टिर्व्यपेतकलुषमनाः ॥
धीमान् गुरूपदभक्तो ज्वालिन्याराधकः स भवेत् ॥६॥

अर्थात् जो मिताहारी है, मुनिभक्त है, सम्यग्दृष्टि है, जित विषयवाला है, बुद्धिमान है गुरुभक्तिसे युक्त है, वही ज्वाला-मालिनी देवी की आराधना करनेके लिए योग्य है।

मल्लिषेणसूरिके द्वारा विरचित पद्मावती कल्प भी देखिये।

निर्जितमदनाटोपः प्रशमितकोपो विमुक्तविकथालापः।
देव्यर्चनानुरक्तो जिनपदभक्तो भवेन्मंत्री ॥६॥

जिसने कामके आवेगको जीत लिया है, क्रोध कषाय को मंद किया है, विकथालापका त्यागी है, वह पद्मावती देवीकी आराधना करनेवाला है, जिनेन्द्र चरण कमलोंका भक्त है, वह यथार्थमें मंत्रसाधनके अधिकारी है। आगे और भी गुणोंको प्रतिपादन करते हुए आचार्यने प्रकरण को स्पष्ट किया है।

मन्त्राराधनशूरः पापविदूरो गुणेन गंभीरः।
मौनी महाभिमानी मन्त्री स्यादीदृशः पुरुषः॥

जो मंत्र सिद्ध करनेमें वीर, पापसे रहित, गुणसे गंभीर, मौनी और महाअभिमानी अर्थात् स्वकर्म को करनेमें जिद्दसे स्थिर रहनेवाला, इंद्रियोंको वशमें करनेवाला मंत्री हो सकता है।

गुरुजनहितोपदेशो गततंद्रो निद्रया परित्यक्तः।
परिमितभोजनशीलः सः स्यादाराधको देव्याः॥

जो गुरुजनोंसे उपदेश पाया हुआ हो, तंद्रारहित हो, निद्राको जीतनेवाला हो, एवं कम भोजन करनेवाला हो वही देवीका आराधक हो सकता है।

निर्जितविषयकषायो धर्मामृतजनितहर्षगतकायः।
गुरुवरगुणसंपूर्णः स भवेदाराधको देव्याः॥६॥

[illegible]

शुचिः प्रसन्नो गुरुदेवभक्तो दृढव्रतः सत्यदयासमेतः ।
दक्षः पटुर्बीजपदावधारी मंत्री भवेदीदृश एव लोके ॥१०॥

अर्थात् जो पवित्र हो, प्रसन्न हो, गुरु और देवकी भक्ति रखनेवाला हो, व्रतोंमें दृढ हो, सत्यभाषी हो, दयावान् हो, चतुर और बीजाक्षरोंके अर्थको अवधारण करनेमें समर्थ हो, वही मन्त्राराधक होनेके योग्य है। इस प्रकरण का उपसंहार करते हुए आचार्य कहते हैं।

एते गुणा यस्य न संति पुंसः क्वचित् कदाचित् न भवेत् स मन्त्री ।
करोति चेत् दर्पवशात्स जाप्यं प्राप्नोत्यनर्थं फणिशेखरायाः ॥११॥

इन उपर्युक्त प्रकारके गुण जिस पुरुषमें न हों वह कदापि मन्त्रसाधक नहीं हो सकता है, यदि कोई अभिमानवश कोई मन्त्र साधन करें तो अनर्थको प्राप्त होता है।

इस प्रकरणको लिखनेका अभिप्राय यह है कि आचार्योंने उन शासनदेवियोंकी आराधना जिनधर्मकी प्रभावना के लिए करनेकी अनुमति दी है। मन्त्राराधक सम्यग्दृष्टि हो, व्रताराधक हो इत्यादि विशेषणोंके द्वारा यह भी बतलाया गया है कि इन कारणोंसे यदि उन शासनदेवदेवियोंकी आराधना करें तो सम्यग्दर्शनमें मलिनता भी नहीं होती है, व्रतकी विराधना भी नहीं होती है प्रत्युत मंत्र आराधकको सम्यग्दृष्टि होना, व्रती होना आवश्यक है।

ऐसा होनेपर हीपूज्यपूजक भाव हो सकता है। आराध्य देवीके प्रति आदर हो सकता है। जिनधर्मकी प्रभावनाके लिए

जिनशासनदेवी के प्रति आदर व्यक्त करनेसे सम्यग्दर्शन मलिन नहीं होता है। नहीं तो ग्रन्थकार इस विषयका प्रतिपादन ही नहीं करते। कोई पंचगुरुवोंके शरण जाकर आत्मकल्याण करनेकी भावना करते हैं, तो कोई आत्मकल्याण के साथ जिनशासनकी प्रभावना करते हैं, इन दोनोंका मार्ग अलग अलग है।

[२]

जैनागममें शासन देवतावोंका उल्लेख

जैनागममें यत्र तत्र प्रकरणोंमे शासनदेवोंका उल्लेख किया गया है, उनको शासनभक्त समझकर उनका आदर करनेका विधान है। इसलिए जिस दृष्टिसे जिस विधिसे उनका समादर करनेका आचार्योने निरूपण किया है उसे देखनेपर इसमें कोई विरोध नहीं आता है। परंतु इसका विरोध करनेवाले बन्धुवोंके पास न कोई युक्ति है, और न आगम है। उनके पास एक अच्छा शस्त्र है, वे जिन आगमोमें इस विषयका उल्लेख है उसी आगमको अप्रमाण कोटिमें ढकेल देते हैं। मूलसंघका यह ग्रन्थ नहीं, और संघका कहकर उन आगमोंके विषयमे अश्रद्धा निर्माण करते हैं, साथमे मजा यह है कि अपने मतलबकी कोई बात निकली तो उन्ही ग्रन्थोंका प्रमाण पेशकर देते हैं, उस समय यह ध्यान भी नहीं रहता हैं कि हमने इस ग्रन्थको अप्रमाण करार दे दिया हैं।

अब हम इस प्रकरणमे यह उल्लेख एकत्रित करनेका प्रयत्न करेंगे कि हम जैनागममें शासनदेवोंके संबंधमें कहां कहां उल्लेख आया हैं, वहां प्रकरण क्या है ? किस उद्देशसे आचार्योने इन शासनदेवोंका उल्लेख किया हैं।

सबसे पहिले हम यतिवृषभ विरचित तिलोयपण्णत्ति (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) का प्रमाण उपस्थित करते हैं। यतिवृषभ—

आचार्य जैनसिद्धांतके माने हुए आचार्य हैं जिन्होंने जयधव
नामक कषाय प्राभृत ग्रन्थकी रचना की है। षट्खंडागम सूत्र
विषयमें टीका लिखने वाले ये आचार्य बड़े ही प्रतिभाशा
सिद्धांतवेत्ता आचार्य हैं, प्राचीन हैं, त्रिलोकसार टीका क
हैं, उन्होंने अपने ग्रन्थमें २४ यक्षयक्षियोंका उल्लेख किया है।

जक्खणाम. तिलोयपण्णत्ती पृ. २६६ गाथा ९३४ से ९३

गोवदण महाजक्खो तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ।
मादंग विजय अजिओ बम्हो बम्हेसरो य कोमारो ॥९३४॥
छम्मुहओ पादालो किण्णर किंपुरिस गरुडगंधव्वा।
तहय कुबेरो वरुणो भिउडी गोमेदपाससमातंगा ॥९३५॥
पुप्फओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसह पहुदीणं।
तित्थयराणं पासे चेट्ठंते भत्तिसंजुत्ता ॥९३६॥
जक्खीओ चक्केसरि रोहिणि पण्णत्ति वज्जसिंखलया।
वज्जंकुसा य अप्पदि चक्केसरि पुरिसदत्तीय ॥९३७॥
मणवेगा कालीओ तह जालमालिनी महाकाली।
गउरी गंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी ॥९३८॥
माणसि महमाणसिया जयाय विजया पराजिदाओय।
बहुरूपिणि कुम्भंडी पउमा सिद्धायणी ओत्ति ॥९३९॥

तिलोयपण्णत्ति

भगवान् तीर्थंकरोंके पार्श्वमें अत्यंत भक्तिसे युक्त यक्ष
और यक्षी बैठती हैं जिनके नाम इस प्रकार है।

यक्षोंके नाम ये हैं:—

गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख यक्षेश्वर, तुम्बुरु, मातंग
विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, (असमार) कुमार, षण्मुख,
पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटी,
गोमेद, (धरणेंद्र) पार्श्व, मातंग और पुष्पक, ।

यक्षिणियोंके नाम ये हैं।

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, अनंतमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कूष्मांडिनी, पद्मावती, सिद्धायिनी, इस प्रकार २४ यक्षिणियां हैं।

उपर्युक्त श्लोकोंमें इन २४ यक्ष व यक्षिणियोंको जिनेन्द्रके परम भक्त हैं, ऐसा उल्लेख किया गया है। इसका अर्थ वे शासन भक्त व जिनेन्द्रभक्त देव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं है। यह भी अर्थ गृहीत किया गया है। इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध मिथ्यादृष्टि देवदेवियां भी हैं, वे अलग हैं, उनकी उपासना सांसारिक विषयोंकी पूर्तिके लिए करना वह मिथ्यात्व है, मिथ्यादेवोंमें और शासनदेवोंमें अंतर है।

इसी तिलोयपण्णत्तीमें अन्य व्यंतर देवोंका भी उल्लेख है, परन्तु इन यक्ष यक्षिणियोंके नाम अलगसे निर्देश किये गये हैं, इससे भी ज्ञात होता है कि ये सामान्य देव नहीं है, भगवान्के शासनभक्त होनेके कारण शासन देवता कहलाते हैं, अतः आदरणीय हैं।

इस ग्रन्थके संबंधमें प्रस्तावनामें संपादकोंने लिखा है कि धार्मिक पाठक उसे उसके विषयके लिए श्रद्धासे पढेंगे, क्योंकि यह यतिवृषभ जैसे प्राचीन और प्रामाणिक आचार्यकी रचना है, उनके शब्दोंका हमें अवश्य श्रद्धापूर्वक आदर करना चाहिये।

इस संबंधमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

—००—

*प्राच्य नेमिनाथाय स्वाहेत्येतदनन्तरं ।
सौधर्माय पदं चास्मात् स्वाहेत्यंतमनुस्मरेत् ॥५०॥
कल्पाधिपतये स्वाहा पदं वाच्यमतः परं ।
भूयोप्यनुचरायादि स्वाहा शब्दमुदीरयेत् ॥५१॥
ततः परंपरेंद्राय स्वाहेत्युच्चारयेत्पदम् ।
संपठेदहमिंद्राय स्वाहेत्येतदनंतरम् ॥५२॥
ततः परमार्हताय स्वाहेत्येतत्पदं पठेत् ।
ततोप्यनुपमायेति पदं स्वाहा पदान्वितं ॥५३॥
सम्यग्दृष्टिपदं चास्माद्बोध्यांते द्विरुदीरयेत् ।
तथा कल्पपतिं चापि दिव्यमूर्तिं च संपठेत् ॥५४॥
दिव्यार्चं वज्रनामेति ततः स्वाहेति संहरेत् ।
पूर्ववत्काम्यमंत्रोपि पाठ्योत्यांते त्रिभिः पदैः ॥५५॥

आदिपुराण पर्व ४०

इस प्रकार आचार्यने सुरेंद्र मंत्रके प्रयोग का क्रम बताया है, साथ ही मंत्र प्रयोग भी ग्रन्थमें इस प्रकार किया है ।

सत्यजाताय स्वाहा । अर्हज्जाताय स्वाहा । दिव्य जाताय स्वाहा । दिव्यार्च्य जाताय स्वाहा । नेमिनाथाय स्वाहा । सौधर्माय स्वाहा । कल्पाधिपतये स्वाहा । अनुचराय स्वाहा । परंपरेंद्राय स्वाहा । अहमिंद्राय स्वाहा । परमार्हताय स्वाहा । अनुपमाय स्वाहा । सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्य मूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनाम वज्रनाम स्वाहा । सेवाफलं षट् परमस्थानं भवतु । अपमृत्यु विनाशनं भवतु । समाधिमरणं भवतु ।

इति सुरेंद्र मंत्राः

इन श्लोकोंका व मंत्रोंका अर्थ यह है कि तत्वदर्शी मुनियोंके द्वारा ऋषिमंत्रका प्रतिपादन किया गया है. भगवान्

[illegible]

[illegible] है।

[illegible] स्वाहा (जो [illegible] जन्म लेने-वालेको अर्पण करता है) [illegible] अर्हज्जाताय स्वाहा (अर्हंतके [illegible] जन्म लेनेवालेके लिए समर्पण) दिव्य जाताय स्वाहा (दिव्य जन्म लेनेवालेके लिए समर्पण) दिव्यार्चिर्जाताय स्वाहा (जिसका जन्म दिव्य तेज रूप है उसके लिए समर्पण) नेमि-नाथाय स्वाहा (सुरेंद्रचक्रकी धुरीका जो स्वामी है उसके लिए समर्पण) सौधर्माय स्वाहा (सौधर्म इन्द्रके लिए समर्पण) [illegible] पतये स्वाहा(इन्द्रोंके लिए समर्पण) अनुचराय स्वाहा (इंद्रके अनुचरोंके लिए समर्पण) अहमिन्द्राय स्वाहा (अहमिन्द्रके लिए समर्पण) परमार्हताय स्वाहा (अरहंत देवके उपासकोंमें जो सर्व श्रेष्ट हैं उनके लिए समर्पण) अनुपमाय स्वाहा (उपमारहितके लिए समर्पण)

इसके बाद सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे कल्पपते कल्पपते दिव्य-मूर्ते दिव्यमूर्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा कहकर सुरेंद्रका संबोधन किया है, एवं उसे समर्पण किया है।

इससे देवेंद्रको आदरणीय समझकर इस प्रकरणमें ग्रन्थ-कारने सुरेंद्रमंत्रका उच्चारण व विधान किया है, यह स्पष्ट होता है। इसके बाद परमराज्यमंत्रका उल्लेख करते हुए सुरेंद्र मंत्रके संबंधमे भी ग्रन्थकार कहते हैं कि—

सुरेंद्रमंत्र एवं स्यात्सुरेंद्रस्यानुतर्पणम ।
मत्रं परमराज्यादि वक्ष्यामीतो यथाश्रुतम् ॥

आ. पु. पर्व-४० श्लो. ५६.

यह सुरेंद्र मन्त्र है, सुरेंद्रके लिए यह तृप्ति करनेवाला मन्त्र है, अब परमराज्यादि मन्त्रोंका कथन श्रुतागमके अनुसार कहूंगा।

विवेचनः— इस प्रकरणके उल्लेखका प्रयोजन यह है कि ग्रन्थकारको देवेन्द्रका समादार करना इष्ट था, यदि वह मिथ्यात्व होता तो सुरेंद्रादि मंत्रोंका विधान क्यों करते, इससे ज्ञात होता है कि सप्तपरम स्थानोंकी प्राप्तिका उद्देश सामने रखकर हर गृहस्थको उस प्रकारकी क्रिया व प्रयोगोंको करना ही चाहिये, उसमें कोई मिथ्यात्व नहीं है।

यहांपर उत्तर भागमें उस देवेन्द्रका संबोधन करते हुए आचार्यने यह भी कहा है कि सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे अर्थात् वह सम्यग्दृष्टि जीव है, उत्तर भवसे मुक्तिको पानेवाला है, अतः उसका आदर करना हेय नहीं है।

आचार्यका विवेक

सुरेंद्र व अर्हंतमें अन्तर

सुरेंद्रमंत्र, परमराज्यादि मंत्र, निस्तारक मंत्रके प्रयोगमें और काम्य मंत्र, ऋषिमंत्र, परमेष्ठि मंत्रके प्रयोगमें अन्तर है, हमारे वाचक इसे ध्यानसे देखें।

सुरेंद्रादिक मंत्रके प्रयोगमें सिर्फ स्वाहा पदका उपयोग किया है, परन्तु ऋषिमंत्र, परमेष्ठि, सिद्ध मंत्रादिकमें नमः स्वाहा किया है अर्थात् उस प्रयोगमें नमः शब्दको जोडकर अधिक आदर व्यक्त किया है। इसलिए गृहस्थाचार्यको सुरेंद्र चक्रवर्ति आदिका केवल स्वाहा पदका प्रयोगकर आदर करना चाहिये।

संस्कारोंका उद्देश

गर्भाधानादि संस्कारोंका उद्देश यह कि वह जीव सप्त-परमस्थानोंकी प्राप्ति करके निर्वाण लाभ करें। सप्तपरम

स्थानोंके लाभसे संसारमें भी प्रभावशाली बनता है, मोक्ष—लाभ भी करता है। इसलिए आचार्यने सप्त परमस्थानोंकी प्राप्तिके लिए आदेश दिया है, वह इस प्रकार है।

सज्जातिः सद्गृहित्वं च पारिव्राज्यं सुरेंद्रता ।
साम्राज्यं पदमार्हंत्यं परं निर्वाणमित्यपि ॥
स्थानान्येतानि सप्त स्युः परमाणि जगत्त्रये ।
अर्हद्वागमृतास्वादात्प्रतिलभ्यानि देहिनाम् ॥

पर्व ३८ श्लो. ६७-६८

अर्थात् सज्जातित्व, सद्गृहस्थत्व, पारिव्राज्य [मुनिदीक्षा] सुरेंद्रत्व, चक्रवर्तित्व, अर्हंतपद व अंतमें निर्वाण पद ये सात तीन लोकमें उत्तम स्थान माने गये हैं। अर्हंत परमेष्ठी के वचन रूपी अमृतके आस्वादनसे ही ये परमस्थान प्राणियोंको प्राप्त होते हैं।

इसलिए उन गर्भान्वयादि क्रियावोंमें मंत्रका प्रयोग करते समय अन्तमें काम्यमंत्रके द्वारा यह इच्छा की गई है कि सेवा-फलं षट् परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि—मरणं भवतु,

भगवन् ! मुझे इस सेवाके फलके रूपमें षट् परम स्थानोंकी प्राप्ति होवे, क्योंकि एक परम स्थान सज्जातित्व है ही. बाकीके छह परमस्थानोंको प्राप्त करना है, अपमृत्युका विनाश हो, समाधिमरणकी प्राप्ति हो।

इसलिए इन सप्त परमस्थानोंकी प्राप्तिपर जोर देते हुए आचार्य ३९ वें पर्वके अन्तमें स्पष्ट कहते हैं।

भव्यात्मा समवाप्य जातिमुचितां जातस्ततः सद्गृही।
पारिव्राज्यमनुत्तरं गुरुमतादासाद्य यातो दिवम् ॥
तत्रैंद्रीं श्रियमाप्तवान् पुनरतः च्युत्वा गतश्चक्रिताम्।
प्राप्तार्हन्त्यपदः समग्रमहिमा प्राप्नोत्यतो निर्वृतिम् ॥
पर्व ३९ ॥२११॥

अर्थात् जो भव्यात्मा सज्जातित्वको पाकर सद्गृहित्वको प्राप्त करता है, तदनन्तर योग्य कालमें गुरु सान्निध्यमें पारिव्राज्य स्थानको प्राप्त करता है, वहांसे देवलोकमें जाकर इंद्र पदवीको प्राप्त करता है, वहांसे च्युत होकर यहांपर चक्रवर्तित्व पदको प्राप्त करता है, तदनन्तर आर्हन्त्य पदको प्राप्त करता है, तदनन्तर अन्तमें मुक्तिसाम्राज्यको प्राप्त करता है, यह सप्त परम स्थानोंकी प्राप्ति है। इनकी प्राप्तिके लिए उक्त गर्भान्वय कर्त्रन्वय आदि क्रिया संस्कारोंकी आवश्यकता है।

भगवज्जिनसेनाचार्यने इन सौधर्मेंद्र और शासनदेवताओंके आदरका ही निरूपण नहीं किया है, अपितु अन्य देवताओंकी पूजनका भी समर्थन किया है।

आदिपुराण पर्व ३८ देखियेगा

दिव्यास्त्रदेवताश्चाभूराराध्याः स्युर्विधानतः।
ताभिस्तु सुप्रसन्नाभिरवश्यंभावुको जयः ॥२६०॥

भरतेश्वरकी सेनामें उपस्थित राजाओंको संबोधन करते हुए भरतेश्वर कहते हैं कि राजाओ! आप लोग न्यायसे प्रजाओंकी रक्षा करें, अन्यायमें प्रवृत्त हुए तो तुम्हारा जीवनोपाय नष्ट होगा। न्याय तो दुष्टनिग्रह और शिष्टपरिपालन है, प्रजानायकोंका कर्तव्य है कि वे सदा क्षात्रधर्मकी रक्षा करें इन दिव्य अस्त्र देवताओंकी आराधना शास्त्रविधानसे अवश्य

महापुराण ४० वें पर्वके प्रारंभमे भगवज्जिनसेनाचार्य उत्तर चूलिका कथन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं। उस उत्तर चूलिकाका भेद करते हुए गर्भान्वय, दीक्षान्वय एवं कर्त्रन्वयके भेदसे क्रिया-वोंका भेद करते हैं, एवं उन क्रियावोंमें प्रयुक्त मंत्रोंके कथनकी की प्रतिज्ञा करते हैं, क्योंकि क्रियासिद्धि मंत्राधीन होती है।

वहांपर सबसे पहिले चक्रत्रय, छत्रत्रय व अग्नित्रयकी स्थापना करनेका विधान है, यह अग्नित्रय क्या है? दक्षिणाग्नि गार्हपत्य अग्नि, आहवनीय अग्नि इस प्रकार अग्नित्रयोंकी स्थापना करें, प्रत्येक क्रियामें होम होना आवश्यक है, इन अग्नियोंमें पवित्रता है, अतः उनकी आराधना की जाती है, उन अग्नियोंमें पवित्रता कैसे आई? इस संबंध का विवेचन ग्रन्थ-कार स्वयं करते हैं।

त्रयोग्नयः प्रणेयाः स्युः कर्मारंभे द्विजोत्तमैः।
रत्नत्रितयसंकल्पादग्नींद्रमुकुटोद्भवाः ॥८२॥
तीर्थकृद्गणभृच्छेषकेवल्यंतमहोत्सवे।
पूजांगत्वं समासाद्य पवित्रत्वमुपागताः ॥८३॥
कुन्डत्रये प्रणेतव्यास्तत्र एते महाग्नयः।
गार्हपत्याहवनीय दक्षिणाग्निप्रसिद्धयः ॥८४॥
अस्मिन्नग्नित्रये पूजां मंत्रैः कुर्वन् द्विजोत्तमः।
अहिताग्निरिति ज्ञेयो नित्येज्या यस्य सद्मनि ॥८५॥
हविष्पाके च धूपे च दीपोद्बोधनसद्विधौ।
वह्नीनां विनियोगः स्यादमीषां नित्यपूजने ॥८६॥
प्रयत्नेनाभिरक्ष्यं स्यादिदमग्नित्रयं गृहे।
नैव दातव्यमन्येभ्यस्तेन्ये ये स्युरसंस्कृताः ॥८७॥
न स्वतोग्नेः पवित्रत्वं देवताभूयमेव वा।
किंत्वर्हद्दिव्यमूर्तीज्यासंबंधात्पावनोनलः ॥८८॥

[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥
[illegible] ।
[illegible] ॥[illegible]॥

इन श्लोकोंका [illegible] है ।

गर्भान्वयादि क्रियाओंमें [illegible] है कि अग्नित्रयोंका संस्कार करें, [illegible] गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि एवं आहवनीयाग्निका संस्कार [illegible] गर्भाधानादि संस्कार करें. [illegible] निर्वाण महोत्सवमें पूजा सम्बन्धको प्राप्त होनेके कारण पवित्रताको प्राप्त हुए प्रसिद्ध गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिणाग्निको तीन कुंडोंमें संस्कार करें एवं स्थापित करें, जिसके घरमें प्रतिनित्य अग्नित्रयोंकी रक्षा होती है वह आहिताग्नि श्रावक कहलाता है, नित्यपूजामें इन तीन अग्नियोंका उपयोग नैवेद्यके निर्माणमें, दीपको प्रज्वलित करनेमें तथा धूप उध्दूप करनेमें होता है, इसलिए श्रावकको उचित है कि वह अपने घरमें इन अग्नियोंकी प्रयत्नसे रक्षा करें, गर्भाधानादि संस्कारसे रहित इतरोंको इनको प्रदान न करें. यद्यपि अग्निको स्वतः पवित्रत्व एवं देवत्व नहीं है, तथापि अर्हत्परमेश्वरकी दिव्य मूर्तिके पूजासंबंधसे इस अग्नियें पवित्रता आती है, इसलिए श्रावकोत्तमोंका कर्तव्य है कि वे पूजासाधकत्वका विचार कर इसकी पूजा करें, इस कारणसे सम्मेदशिखर आदि तीर्थ-निर्वाण क्षेत्रोंकी पूजाके समान इसमें कोई दोष नहीं है, अग्निकी पूज्यता व्यवहार नयकी अपेक्षा कही गई है, इस व्यवहार नयका आश्रय जैनियोंके द्वारा अनुसरणीय है ।

इसके बाद आचार्यने गर्भाधानादि क्रियावोंमें प्रयुक्त होनेवाला मंत्रोंका उल्लेख किया है, उसीमेंसे हमने पूर्व प्रकरणमें सुरेंद्रमंत्रका उद्धरण दिया है।

इस प्रकरणको लिखनेका प्रयोजन यह है कि व्यवहार नयकी अपेक्षासे अग्नीकी भी पूजा श्रावकोंके लिए विहित है। आचार्य जिनसेन स्वामीने बहुत स्पष्टतासे सहेतुक निरूपण किया है कि निर्वाण क्षेत्र आदि को भूमियोंमें पूज्यता क्यों आई, अनंतसिद्ध उस भूमिपर खडे होकर तपश्चर्या करते रहे एवं अपने कर्मोंका नाश किया इसलिए न? उन सिद्धात्मावोंमें पूज्यता होनी चाहिये, हम तो उन निर्वाण क्षेत्रोंको भी पवित्र मानकर वंदना पूजादि करते हैं। इसलिए अर्हत्परमेश्वरके पूजासान्निध्यसे इन अग्नित्रयोंमें भी पवित्रता व पूज्यता आगई है।

होमकर्मके लिए इन अग्नियोंकी आवश्यकता है ही, इनमें किन मंत्रोंका प्रयोग है उसका विवेचन आगे यथास्थान करेंगे।

भरतेश्वर आदि प्रभुके ज्येष्ठ पुत्र व तद्भव मोक्षगामी हैं, इसलिए उन्होंने कोई मिथ्यात्व समन्वित कार्य किया, यह कोई उच्छृंखल व्यक्ति ही कह सकता है। उनके अनुष्ठानमें, गृहस्थावस्थामें होते हुए भी कर्मनिर्जरा की निष्ठा हमें देखनेमें आती है। इसलिए उनका आचरण हमें दृष्टिपथमें रखना चाहिये।

समवसरणमें पहुंचकर उन्होंने क्या किया, इस संबंधका विवेचन भगवज्जिनसेनाचार्य क्या करते हैं, इसका भी अवलोकन कीजियेगा।

दरबारमें विराजे हुए भरतेश्वरको आयुधशालामें चक्ररत्न की उत्पत्ति, महलमें पुत्ररत्न की उत्पत्ति एवं भगवान्

अतः स्वामिसेवा-केवलज्ञानकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार भरतेश्वरने प्रभुकी केवलज्ञान पूजाको करनेके पहिले निश्चय किया। क्योंकि संसारमें धर्मात्मावोंकी प्रक्रिया प्रायः पुण्यानुबंधिनी ही हुआ करती है, उनकी समस्त क्रियवोंसे पुण्यका ही बंध होता है। अतः वे समादरणीय हैं। 卐

इस प्रसंगको लिखनेका प्रयोजन यह है कि भरतेश्वरकी वृत्ति हमारे लिए समादरणीय ही नहीं अपितु अनुकरणीय भी है। आगे जाकर उन्होने क्या किया उसपर हमें प्रकाश डालना है, हमारे वाचक ध्यानसे उस प्रकरणको देखें।

भरतेश्वर अपने अनुज बाहुबलि, आदि परिवारोंके साथ भगवान् आदि प्रभुकी पूजा के लिए समवसरणमें जाते हैं। हम अपने वाचकोंको भी समवसरणमें ले जाते हैं। देखिये:—

ततः प्रदक्षिणीकुर्वन् धर्मचक्रचतुष्टयम्।
लक्ष्मीवान्पूजयामास प्राप्य प्रथमपीठिकाम् ॥१९॥
आदिपुराण २४ पर्व

तदनंतर ऐश्वर्य संपन्न भरतेशने लक्ष्मी मंडपको प्रदक्षिणा दी एवं प्रथम पीठिकामें पहुँचकर चार धर्मचक्रोंकी पूजा की।१९।

आगे और देखिये.

ततो द्वितीय पीठस्थान् विभोरष्टौ महाध्वजान्।
सोर्चयामास संप्रीतः पूतैर्गंधादिवस्तुभिः ॥२०॥
आदिपुराण पर्व २४

धर्मचक्रकी पूजाके बाद भरतेश्वरने संतुष्ट होकर दूसरे पीठमें स्थित प्रभुकी अष्ट महाध्वजावोंको पूजा पवित्र जल-गंधादि द्रव्योंसे की।॥२०॥

卐 निश्चिचायेति राजेंद्रो गुरुपूजनमादितः।
अहो धर्मात्मनां चेष्टा प्रायः पुण्यानुबंधिनी ॥९॥

[illegible] चाहिये।

भरतेश्वरने विचार किया कि मुझे पुत्रतीर्थ, पुत्रोत्पत्ति, एवं चक्ररत्न इन तीनों, धर्म, अर्थ, कामरूपी पुरुषार्थोंकी फलोत्पत्ति एक ही समयमें हुई है, इन तीनोंमें भगवान्‌को केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई है यह धर्मपुरुषार्थका फल है, मुझे जो पुत्रोत्पत्ति हुई है यह काम पुरुषार्थका फल है, प्रकाशमान चक्ररत्नकी प्राप्ति प्रयोजनीभूत अर्थ पुरुषार्थकी सूचना या अर्थपुरुषार्थका फल है। ❁

अथवा विशेष विचार क्या ? यह सभी धर्मके फलसे प्राप्त हुए हैं। क्योंकि अर्थ तो धर्मवृक्षका फल है, काम उस फल का रस है। इसलिए इन तीनोंमें सबसे श्रेष्ठ, महान पुण्यको उत्पन्न करनेवाले, बड़ा इच्छित फलदायक उस धर्मकी आराधना पहिले करनी चाहिये। ★

❁ त्रिवर्गफलसंभूतिरक्रमोपनता मम।
पुण्यतीर्थं सुतोत्पत्तिश्चक्ररत्नमिति त्रयी ॥५॥
तत्र धर्मफलं तीर्थं पुत्रः स्यात्कामजं फलं।
अर्थानुबंधिनोर्थस्य फलं चक्रं प्रभास्वरं ॥६॥

★ अथवा सर्वमप्येतत्फलं धर्मस्य पुष्कलं।
यतोधर्मतरोरर्थः फलं कामस्तु तद्रसः ॥७॥
कार्येषु प्राग्विधेयं तद्धर्म्यं श्रेयोनुबंधि यत्।
महाफलं च तद्देवसेवा प्राथमकल्पिकी ॥८॥

अतः स्वामिसेवा-केवलज्ञानकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार भरतेश्वरने प्रभुकी केवलज्ञान पूजाको करनेके पहिले निश्चय किया। क्योंकि संसारमें धर्मात्मावोंकी प्रक्रिया प्रायः पुण्यानुबंधिनी ही हुआ करती है, उनकी समस्त क्रियवोंसे पुण्यका ही बंध होता है। अतः वे समादरणीय हैं। 卐

इस प्रसंगको लिखनेका प्रयोजन यह है कि भरतेश्वरकी वृत्ति हमारे लिए समादरणीय ही नहीं अपितु अनुकरणीय भी है। आगे जाकर उन्होने क्या किया उसपर हमें प्रकाश डालना है, हमारे वाचक ध्यानसे उस प्रकरणको देखें।

भरतेश्वर अपने अनुज बाहुबलि, आदि परिवारोंके साथ भगवान् आदि प्रभुकी पूजा के लिए समवसरणमें जाते हैं। हम अपने वाचकोंको भी समवसरणमें ले जाते हैं। देखिये:—

ततः प्रदक्षिणीकुर्वन् धर्मचक्रचतुष्टयम्।
लक्ष्मीवान्पूजयामास प्राप्य प्रथमपीठिकाम् ॥१९॥
आदिपुराण २४ पर्व

तदनंतर ऐश्वर्य संपन्न भरतेशने लक्ष्मी मंडपको प्रदक्षिणा दी एवं प्रथम पीठिकामें पहुँचकर चार धर्मचक्रोंकी पूजा की।१९।

आगे और देखिये.

ततो द्वितीय पीठस्थान् विभोरष्टौ महाध्वजान्।
सोर्चयामास संप्रीतः पूतैर्गंधादिवस्तुभिः ॥२०॥
आदिपुराण पर्व २४

धर्मचक्रकी पूजाके बाद भरतेश्वरने संतुष्ट होकर दूसरे पीठमें स्थित प्रभुकी अष्ट महाध्वजावोंकी पूजा पवित्र जल-गंधादि द्रव्योंसे की।॥२०॥

卐 निश्चिचायेति राजेंद्रो गुरुपूजनमादितः।
अहो धर्मात्मनां चेष्टा प्रायः पुण्यानुबंधिनी ॥९॥

तदनन्तर गंधकुटी के वीच सिंहासनपर विराजमान भगवान् आदि प्रभुको देखा। नंतर स्तुतिस्तोत्र किया, पूजा की यह प्रकरण विस्तार से दिया गया है।

यहांपर हमे यह वतलाना है कि समवसरणमें पहुंचकर भी भरतेश्वरने पहिले धर्मचक्र व महाध्वजावोंकी पूजा की, क्या भरतेश्वर सम्यग्दृष्टि नहीं थे? आजके सम्यग्दर्शनके ठेकेदार इसका उत्तर देवें।

तद्भव मोक्षगामी व आदितीर्थंकरका पुत्र भरतेश्वर सम्यग्दृष्टि नहीं है तो क्या विपुल परिग्रह रखनेवाले स्वच्छंद व उच्छृंखल, आपको हम सम्यग्दृष्टि कहें क्या? धर्मचक्र व ध्वजावोंकी पूजा करना कोई जिनेश्वरको पूजा तो नहीं है, फिर आप इसकी संगति कैसे वैठाल सकते हैं?

तदनंतर भरतेश्वर समवसरणसे लौटे, उन्होने क्या किया उसका भी परिशीलन कीजिये अयोध्या नगरकी महलमे पहुंचनेके वाद:—

अथ चक्रधरः पूजां चक्रस्य विधिवद्व्यधात्।
सुतोत्पत्तिमपि श्रीमान् अभ्यनंददनुक्रमात्॥

आदिपुराण पर्व २६ श्लो. १

इधर भगवान्का विहार कैलासकी ओर होने के वाद भरतेश अयोध्यामें पहुंचे, वहांपर संपत्तिशाली भरतेश्वरने चक्ररत्नकी पूजा यथाविधि की, अनंतर पुत्ररत्नसे उत्पन्न आनन्दोत्सव भी मनाया.

(आदिपुराण)

आदिपुराणके इस प्रमाणसे यह भी सिद्ध है कि चक्ररत्नकी भी पूजा की जाती है, उसकी भी विधी है. नवरात्रिमें मंदिरोंमें जिनेन्द्र भगवन्तकी पूजा शासनदेवतावोंकी पूजा एवं आयुध शालामें आयुधोंकी भी पूजा की जाती है। भरतेश्वरने

भी उसी प्रकारकी पूजा की, यह बिलकुल मिथ्यात्व नहीं है क्योंकि मिथ्यात्वका लक्षण इसमे घटता नहीं है, यह हम पहिले सिद्ध कर आये हैं।

इन प्रमाणोंसे भली भांति सिद्ध होती है कि शासनदेवता जिनेन्द्र शासनके भक्त होनेके कारण समादरणीय हैं।

भगवज्जिनसेनाचार्यने एक बात सुन्दर कही कि जिस प्रकार हम लोग निर्वाणभूमिकी पूजा वन्दना करते हैं उसी प्रकार शासनभक्त या जिनेन्द्रभक्तोंके आदर करनेमे कोई हानि नहीं है, दोषदायक नहीं है।

इसका समर्थन पूज्यपाद आचार्य अपने ग्रन्थमे करते हैं, वह भी देखिये।

इक्षोर्विकाररसपृक्तगुणेन लोके।
पिष्टोधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत् ॥
तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुषितानि नित्यम्।
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ॥

दशभक्ति

इक्षुरस या शक्कर आटेमे मिलानेसे उसमें मिठास अधिक आ जाती है, उसी प्रकार महापुरुषोंके सहवाससे इस जगत्की भूमियोमे पवित्रता आजाती है, वे भूमि पवित्र हैं, उनके द्वारा हमारा उद्धार होता है।

नहीं तो निर्वाण भूमि क्या है ? वहां कंकर व पत्थर है, वहांपर अनेक कोटि साधकोंने आत्मसाधना की है, अनेक वर्षों-तक तपश्चर्या कर कर्मनिर्जरा की है, इसलिए उस भूमिके कण कण पवित्र हैं, इस दृष्टिसे हम उन निर्वाण भूमिकी अष्ट द्रव्योंसे पूजा करते हैं, ऐसा होनेपर भी उन निर्वाण भूमियोमें देवत्व नहीं आता है। देवोंके संबंध होनेसे वह पूज्य है। इसी

प्रकार शासनदेवतावोंकी भगवान् जिनेन्द्र देव समझकर पूजा नहीं की जाती है। वे शासनभक्त हैं इस दृष्टिसे उनका समादर करना अयोग्य नहीं है।

इसी अभिप्रायको महर्षि वादीभसिंहने भी समर्थन किया है।

पावनानि हि जायंते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ।
सद्भिरध्युषिता धात्री सपूज्येति किमद्भुतम् ?
वालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥

क्षत्रचूडामणि लंब ६

अर्थात् सत्पुरुषोंके संसर्गसे अचेतन पृथ्वी भी पवित्र हो जाती है। सत्पुरूषोने जहां जहां निवास किया था वह भूमि पवित्र व पूज्य हो जाती है, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? सिद्ध रसके संसर्गसे लोहा भी सोना वन जाता है। इसमें संदेह नहीं है, इसलिए जिनेन्द्र भगवन्तके सान्निध्यसे जिनमंदिर, मानस्तंभ आदिमे भी पूज्यता आ जाती है, फिर जिनेन्द्रभक्त-शासन देवतावोंमें महत्व क्यों नहीं प्राप्त होगा ?

महर्षि वादिराजसूरि स्वरचित एकीभावस्तोत्रमे एक वात कहते हैं किः—

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्तिः ।
मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः ॥
दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां ।
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥

एकीभावस्तोत्र

भगवन् ! मानस्तंभमे इतरोंके मानको गलित करनेकी शक्ति कैसी आई ? वह तो पत्थर का वना हुआ है, लोकमें

र भी पत्थर है, बड़े बड़े भी है, उनमें तो मानगलित नहीं
ता है, नहींतो, वह रत्नसे निर्मित मानस्तंभ है, सामान्य
थरका बना हुआ नहीं है। इस प्रकारके रत्न तो लोकमें
न्यत्र भी तो रहते हैं, भले ही इतने बड़े न हों, परन्तु छोटे
ोटे अनर्घ्यरत्न तो श्रीमानोंके पास होते हैं, परन्तु उन रत्नोंके
ान्निध्यसे उलटा मान बढ़ता है, घटता नहीं है. करोड़ दो
करोड़के रत्न पासमें हों तो उनका अहंकार इतना बढ़ता है कि
हम स्वर्गके पास ही पहुंच गये हैं, अब तो हमारे लिए स्वर्ग दो
अंगुली ही रह गयी है, फिर भी उस मानस्तंभ को देखनेपर
लोगोंका मानगलित क्यों होता है ? इसका एक मात्र कारण
भगवन् ! आपकी सन्निधि है, आपका सान्निध्य प्राप्त होनेसे
उसमें यह शक्ति आई। इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवन्तकी सन्निध
प्राप्त होनेसे निर्वाण क्षेत्र, शासनदेव आदिमें पूज्यता आ
जाती है।

श्री देवसेन सूरिविरचित भावसंग्रह

इस ग्रन्थके कर्ता विमलसेन गणीके शिष्य देवसेनसूरि
हैं, इन्होंने दर्शनसार, तत्वसार, आराधनासार, नयचक्र, भाव-
संग्रह आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है. वि. सं. ९९० में
इन्होंने दर्शनसारकी रचना की है, इससे ज्ञात होता है कि ये
आचार्य १० वीं शताब्दीमें हुए हैं। इनके ग्रन्थ महत्वपूर्ण
व मान्य हैं।

प्राकृतमें रचित भावसंग्रहमें १४ गुणस्थानोंके निरूपणमें
गुणस्थानोंका वर्णन बहुत विस्तृत रूपसे किया है। पंचमगुण
स्थानवर्ती विरताविरत श्रावकके कर्तव्योंका, व्रत नियमोंका
विस्तारके साथ प्रतिपादन करते हुए आचार्यने श्रावक धर्ममें

इहलोक व परलोकमें सकल संपत्तिको प्राप्त करता है। अष्ट-द्रव्योंकी पूजनकी भी अचिंत्य महिमा है।

इस प्रकरणसे दशदिक्पालकोंका आव्हान अभिषेकके प्रारंभमें करना आवश्यक है, यह सिद्ध होता है एवं अभिषेक भी पंचामृतोंसे होता है यह भी आचार्यने ध्वनित किया है। हमने संक्षेपसे आवश्यक प्रकरणको मात्र यहांपर लिया है, जिनको विस्तारसे देखना होवे श्रीदेवसेनसूरिविरचित भाव-संग्रहका अवलोकन करें।

श्रीवामदेवकृत-भावसंग्रह

श्री वामदेवने संस्कृतमें भावसंग्रहकी रचना की है, उसमें भी यह प्रकरण है, पाठकोंके अवलोकनार्थ उसे भी यहां उद्धृत करते हैं।

जिनेन्द्र मन्दिरमें पहुंचकर श्रावक हस्तशुद्धि, सकली करण आदि क्रिया करें। पूजापात्र, पूजा द्रव्योंकी शुद्धि-कर भूमिशुद्धि करें, भूमिपूजासे नियृत्त होकर नागतर्पण करे, एवं आग्नेयदिशामें क्षेत्रपालकी स्थापना करें।

यथा:-

हस्तशुद्धि विधायात्र प्रकुर्याच्छकलीक्रियाम्।
कूटबीजाक्षरैर्मंत्रैर्दशदिग्बंधनं ततः ॥४७॥
पूजापात्राणि सर्वाणि समीपीकृत्य सादरम्।
भूमिशुद्धिं विधायोच्चैर्दर्भाग्निज्वलनादिभिः ॥४८॥
भूमिपूजां च निर्वृत्य ततस्तु नागतर्पणम्।
आग्नेयदिशि संस्थाप्य क्षेत्रपालं प्रतृप्य वा ॥४९॥

यहां पंचकुमार देवोंके सत्कारका विधान है। एवं क्षेत्र—पालके तर्पणका विधान है।

पद्मावती च धरणश्च कृतोपकारं ।
तत्कालजातमवधि प्रणिधाय वुध्वा ॥
आनम्रमौलिरुचिरच्छविचर्चितांघ्रि-।
मानर्चतुः सुरतरुप्रसवैर्जिनेंद्रम् ॥८७॥
पार्श्वनाथचरितम १० वां सर्ग.

जब वे नाग और नागिनी, धरणेन्द्र और पद्मावती हुए तो उन्हें उसी समय प्राप्त अवधिज्ञानसे उन्होंने उपकारिके विषयमें ज्ञान कर लिया, शीघ्र ही भगवान्के समीप आये, और नम्रीभूत मुकुटोंकी मनोहर कांतिसे जिनके चरण पूजित हैं ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् की उन्होने कल्पवृक्षोत्पन्न सामग्रीसे पूजा की ॥८७॥

अब आगेके प्रकरणको देखिये:—

कमठका वह जीव दुष्ट तपश्चर्याके कारण भूतानंद नामक असुर जातिका देव हुआ, भगवान् पार्श्वनाथने दीक्षा ली, तदनन्तर घोर तपश्चर्या की ।

भूतानन्द देव उसी मार्गसे आकाशसे जा रहा था, परन्तु जिनेन्द्र मुनिके प्रभावसे उसका विमान रुक गया, विमानके रुकने ही कारण तलाश करनेको उसने प्रयत्न किया, मुनिनाथ उसे देखनेमें आये, वह क्रुद्ध हुआ, उसका हृदय जलने लगा । शीघ्र ही वहां पहुंचकर वदला लेनेकी भावनासे तिरस्कार युक्त हंसीसे हंसने लगा, एवं अत्यंत ताडनापूर्ण वचन कहने लगा, नाना प्रकारसे भगवान्का तिरस्कार कर मुनिनाथके ऊपर उपसर्ग करना प्रारंभ किया, आकाश मेघगर्जना व उल्कापातोंसे व्याप्त हो गया, विक्रियासे निर्मित अनेक पिशाचोंने विकृत रूप धारण कर गर्जना करना प्रारंभ किया । उनके मुखसे अग्निकी ज्वाला निकलने लगी, लोग व्याकुलित हुए । नाना प्रकारसे मुनिनाथको तपश्चर्यामें विघ्न उपस्थित करनेका प्रयत्न किया,

र्गा, अग्निवर्षा-आदिकर भगवंतके चित्तमें क्षोभ उत्पन्न
। प्रयत्न किया, परन्तु उस परम तपस्वीको तपश्चर्याके
ते कोई उपयोग नहीं हुआ। दुष्ट भूतानंदका क्रोध बढता
रहा था, तब धरणेन्द्र को इसका पता लगा।

पापाचारस्य दुश्चेष्टामुद्वीक्ष्य चरिचक्षुषा।
पद्मावत्या समं देवमुपतस्थौ फणीश्वरः ॥७७॥

पार्श्वनाथ चरितम् ११ वां सर्ग

पापाचारी दुष्ट भूतानंदकी दुश्चेष्टाका ज्यों ही धरणेन्द्र
ता लगा, शीघ्र ही वह पद्मावती देवी के साथ आया व
ानूकी सेवामें उपस्थित हो गया।

तस्य विस्तारयामास सधैर्यः स्तवपूर्वकम्।
स्फुरन्मणिरुचिस्फार स्फुटामंडलमंडपम् ॥७८॥

पार्श्वनाथचरितम् ११ वां सर्ग.

आते ही धरणेन्द्रने भगवन्तकी स्तुति की और जिसमें
ा प्रकारके देदीप्यमान रत्नोंकी कांति जगमगा रही है, ऐसे
ने फणको भगवान् के ऊपर फैला दिया। ॥७८॥

श्वेतच्छत्रं दधौ देवी मुक्ताधामादिवेष्टितम्।
ज्योत्स्नाकलापसंपृक्तं पार्वणेन्दुमिवापरम् ॥७९।

पार्श्वनाथ चरितं ११ वां सर्ग.

देवी पद्मावतीने भी देवोपनीत मोतियोंकी कांतिसे युक्त
ेतछत्र भगवानूके उपर लगा दिया, वह ऐसे मालुम होने लगा,
ानो चांदनीसे विभूषित पूर्णिमासीका दूसरा चंद्रमा हो है।

इससे विषय स्पष्ट हो जाता है, नागनागिनीके जीव ही
रणेन्द्र पद्मावती हुए, धरणेन्द्र व पद्मावती पतिपत्नी थे।
न्होंने ही उपसर्गके समय भगवानूकी सेवा की, आज भी हम

इससे यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि गद्भावृत्त ...के टीकाकारने पहिले दिगंबर संप्रदायमें शासन देवताओंको ... नहीं करनी चाहिये, इस प्रकारका निषेध मान्य नहीं ...ता है।

—००—

आचार्य सोमदेव विरचित यशस्तिलक--चंपू

तदन्तर्गत उपासकाध्यय

इस प्रकरणमें शासन देवताओंके सत्कारके संबंधमें निम्न ...खित प्रकार विवेचन है।

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यन्तराद्याश्च देवताः ॥
समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः ॥

उपासकाध्ययन श्लो. ६९७

इस श्लोकका स्पष्ट अर्थ है कि तीन लोकके अधिपति ...गवान् जिनेन्द्र एवं व्यन्तरादिक शासनदेवताओंको(तीर्थंकरोंके) ...मान मानकर जो पूजा करता है वह बहुत नीचे अर्थात् नर-...में जाता है।

इस ग्रन्थकी टीका श्री सिद्धांताचार्य पं. कैलाशचंद्र शास्त्री ... लिखा है, उन्हींके शब्दमें प्रकरणको देखनेमें हमारे वाचकोंको ...हूलियत होगी। इसलिए उनके द्वारा लिखित उस प्रकरणको ...यों का त्यों उध्दृत करते हैं।

शीर्षक व उत्थानिका इस प्रकार है:

शासन देवताकी कल्पना, (कुछ व्यन्तरादिक देवता जिन ...शासनके रक्षक माने जाते हैं, कुछ लोग उनकी भी पूजा करते हैं, उसके विषयमें ग्रन्थकार बतलाते हैं)

तदनन्तर श्लोकका अर्थ दिया गया है।

समभ लोग उनको ही सब कुछ समभ बैठते हैं, और उनको ही आराधना करने लग जाते हैं, जैसे आजकल अनेक स्थानोमें पद्मावती देवीकी वडी मान्यता देखी जाती है, उनकी मूर्तिके मुकुटपर भगवान् पार्श्वनाथकी मूर्ति विराजमान रहती है, क्यों कि उनके ही णमोकार मंत्रके दानसे नाग-नागिनी मरकर धरणेन्द्र पद्मावती हुए थे, और जब भगवान् पार्श्वनाथके ऊपर कमठके जीव व्यंतरने उपसर्ग किया तो दोनोने पूर्वभवके उपकारको स्मरण करके भगवान्का उपसर्ग दूर किया था, अतः पद्मावतीकी मूर्तिके सामने भी कुछ लोग अष्टद्रव्यसे पूजा करते हुए देखे जाते हैं, उनके आगे दीपक जलाते हैं, पदमावती स्तोत्र पढते हैं, "भुज चारसे फल चार दो पदमावती माता"।

उन ना समभ लोगोंको लक्ष्यकरके ही ग्रन्थकारने बतलाया है कि जो इन देवी देवतावोंको पूजा जिनेन्द्र भगवान्को तरह करते हैं, उनका कल्याण नहीं हो सकता है। यह तो वैसा ही है जैसा कोई किसी महाराजके चपरासीको ही महाराजाकी तरह आवभगत करने लगे। दूसरे, पद्मावती देवी आदि तो जिनशासनके भक्त हैं, और जिनशासनके भक्त वे इसलिए हैं कि उसको आराधना करनेसे, हो आज उन्हे यह पद प्राप्त हुआ है। अतः जो कोई भी जिनशासनका भक्त संकटग्रस्त होता है, धर्मप्रेमवश वे उसकी सहायता करते हैं। अपनी स्तुतिसे प्रसन्न नहीं होते किंतु अपने आराध्यकी आराधनासे स्वयं प्रसन्न होते है, अतः जो व्रती सम्यग्दृष्टि हैं वे उन देवतावोंकी आराधना नहीं करते हैं, इसलिए पं. आशाधरजीने अपने सागारधर्मामृतकी टीकामें लिखा है कि पहिली प्रतिमाक धारक श्रावक आपत्ति आनेपर भी उसको दूर करनेके लिए कभी भी शासनदेवतावोंकी आराधना नहीं करता, हों

वांछासे पूजा करनेका निषेध है, शासनभक्त होने के कारण उनके सम्मानका इसमें निषेध नहीं है।

(६)प्रतिष्ठा आदि अवसरोंमें इनके सम्मानका विधान है ऐसी दबी अवाजसे जो बात करते हैं उन्हें यह भी समझना चाहिये कि नित्य पूजाके समय भी उनके सत्कारका विधान है, इसका प्रमाण भी भावसंग्रह का हम ऊपर दे चुके हैं।

(७)उस मंत्रके प्रभावसे नाग-नागनी धरणेंद्र पद्मावती हुए यह बात कोई २ निषेध करते हैं। टीकाकारको यह बात मान्य है यह आनंदका विषय है।

(८) ना समझ लोगोंकी हर क्षेत्रमें कमी नहीं है, कोई नासमझ लोग शासनदेवतावोंको तीर्थकरोंके समान माने या उन्हींको सब कुछ माने तो उनकी गलती हो सकती है, उनकी गलती के कारण शासनदेवतावोंके सत्कार का ही निषेध नही किया जा सकता है।

(९)सागारधर्मामृतके प्रकरणमें हम आगे स्वतंत्र लिखने-वाले हैं, अतः यहां उस संबंधका विवेचन नहीं करते है।

(१०)जिनेन्द्र भगवानके समान अष्ट द्रव्योंसे शासन देवता-वोंका पूजा विधान जैनागममे नहीं है। शासन देवतावोंका सत्कार षोडशोपचारसे होती है। मर्यादिमें भी अंतर है।

(११) इन सब बातोंके प्रकाशमे आचार्य सोमदेवने भी शासन देवता पूजन (सत्कार) का समर्थन किया है यह सम-झमे आवेगा।

(१२)कोई कोई सज्जन "कल्पिताः परमागमे" इस पदको लेकर विवाद उत्पन्न करते हैं, अर्थात् परमागममें यह (खोटी) कल्पना की गई है, वास्तवमें ये शासन देवताये कोई चीज नहीं हैं, परन्तु पूर्वापर संबंधसे शब्दका अर्थ करना पडता है प्रकार अर्थ करनेपर कोई विरोध नहीं आता।

प्रतीत होता है, आचार्य सोमदेवको भी यही इष्ट था।

(१६) अब रही कल्पिता: इस पदका उन्होंने प्रयोग क्यों किया ? मानिता: इस पदका ही प्रयोग करते, इसमें कोई श्लोक भंग भी नहीं होता है।

इसका स्पष्ट उत्तर है कि ग्रन्थ निर्माण करते समय उन्हें जो पद सामने आया उसका वहांपर प्रयोग किया, शायद उस समय यह कल्पना नहीं की कि इस कल्पिता पदका लोग कुतर्क कर दुरुपयोग करेंगे। क्योंकि उस समय तो शासन देवतावोंको न माननेवालोंका अस्तित्व ही नहीं था। इसलिए विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं थी।

(१७) यदि तथोक्त अर्थ ही इष्ट होता तो आचार्यदेव आगामी श्लोकमें यह कभी नहीं कहते है कि—

'अतो यज्ञांशदानेन माननीया सुदृष्टिभिः'

यदि वह खोटी कल्पना है तो यज्ञांशदानसे सम्यग्दृष्टि उनका सम्मान क्यों करें, सम्यग्दृष्टि तो कल्पित नहीं है, वे तो वास्तविक हैं, उनका महत्व भी है। जो कल्पित, खोटे शासन देवोंका वह अकल्पित, निज व खरा सम्यग्दृष्टि सम्मान क्यों कर करेगा। इससे भी उन सज्जनोंका कथन असंबद्ध प्रतीत होता है।

इसलिए आचार्य सोमदेवके इस ग्रन्थसे भी शासन देवता सम्मानका समर्थन होता है।

इसी ग्रन्थके अंतर्गत देवपूजा व जिनाभिषेक प्रकरणको भी देखिये।

अभिषेकके समय प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना सन्निधापनके अनंतर पूजाका विधान है, सन्निधापनमें यह कल्पना करे कि यह जिनबिंब ही साक्षात् जिनेन्द्रदेव है, यह सिंहासन सुमेरु

पर्वत है, घटोमें भरा हुआ जल साक्षात् क्षीरसमुद्रका जल
और आपके अभिषेकके लिए इन्द्रका रूप धारण करनेके कार
में साक्षात् इंद्र हूँ, तव इस अभिषेक महोत्सवकी पूर्णता क्य
नहीं होगी ?

उपासकाध्ययन पृ. २३५

इससे आगेका श्लोक देखियेगा ।

योगेऽस्मिन्नाकनाथ ज्वलन पितृपते नैगमेय प्रचेतो ।
वायो रैदेश शेषोडुप सपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्राः ॥
मंत्रैर्भूः स्वः सुधाद्यै रधिगतवलयः स्वासु दिक्षूपविष्टाः ।
क्षेपीयः क्षेमदक्षाः कुरुत जिनसवोत्साहिनां विघ्नशांतिम् ॥

उपासकाध्ययन पृ. २३५ श्लो. ५३८

इस अभिषेक महोत्सवमें हे कुशलकर्ता, इंद्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, नाग और चन्द्र इसप्रकार दश प्रमुख ग्रह अपने परिवार जनोंके साथ आकर यहां उपस्थित होवे, एवं ओं भूर्भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, स्वधाय स्वाहा इत्यादि मंत्रोंसे वलि (यज्ञभाग) अर्पण करें एवं उन्हें अपनी अपनी दिशामें उपस्थित होकर शीघ्र ही जिन अभिषेकके लिए उत्साही पुरुषोंके विघ्नोंको शांत करनेके लिए कहे ॥४३८॥

इससे पूजाविधिमें इन दश दिक्पालकोंका आव्हान व उनको अर्घ्यप्रदान करना, सोमदेवके मतसे भी आवश्यक है, यह सिद्ध होता है ।

आचार्य सोमदेवने अपने पूर्ववर्ती आचार्य समंतभद्र, जटासिंहनंदी, आ. गुणभद्र, देवसेन आदिका अनुकरण किया है, अतएव उनके ग्रन्थोंमें प्रामाणिकता है, स्वकपोल कल्पना उनके ग्रन्थोंमें नहीं पाई जाती है ।

एक बात प्रसंगमें उनकी ध्यान देने योग्य है ।

हि धर्मो गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।
ोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः ।।
उपासकाध्ययन ४७६

हस्थोंका धर्म दो प्रकारका होता है, एक लौकिक और
किक, इनमेंसे लौकिक धर्म लोक रीतिके अनुसार होता
पारलौकिक धर्म आगमके अनुसार होता है ।।४७६।।

र्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ।।
उपासकाध्ययन ४८०

जैन धर्मानुयायियोंको वह लौकिक व्यवहार सभी मान्य
ससे उनके सम्यक्त्वमें हानि नहीं होती हो, और न उनके
दूषण लगता हो । ४८०

इससे ग्रन्थकारने यह अभिप्राय भी ध्वनित किया है कि
विषयोंका लोकाचारके रूपमें भी भी उन्होने प्रतिपादन
हैं, उनसे न सम्यक्त्वकी हानि होती है, और न व्रतोंमें
लगता है, इत्यलम् ।।

—oo—

प्रतिष्ठाकारको आशीर्वाद इस श्लोकसे प्रतिष्ठाचार्य
ैं-

देव्योष्टौ च जयादिकाद्विगुणिताविद्यादिकादेवताः ।
श्रीतीर्थंकरमातृकाश्च जनका यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा ।।
द्वात्रिंशत्त्रिदशाधिपास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा ।
दिक्पाला दश चेत्यमी सुरागणाः कुर्वंतु ते मंगलम् ।।

अर्थात् जयादिक आठ देवियां, विद्यादिक षोडश देवतायें
करोंकी मातायें, पिताजन, यक्षयक्षी ३२ देवेंद्र, तिथिदेवतायें
दिक्कन्यायें, दिक्पाल यह सब आपको मंगल करें, आपका
ाण करें ।

भावार्थ– बत्तीस नागकुमार वा यक्षिनिके युगल तिनके हस्त विषें चौसठि चमर हैं, तिनकरि वीज्यमान हैं ॥९८७॥

तिन जिन प्रतिमानिके पार्श्व विषें श्रीदेवी अर सरस्वतीदेवी अर सर्वाण्ह यक्ष अर सनत्कुमार यक्ष इनके रूप जे आकार ते तिष्ठे हैं। भावार्थ जिन प्रतिमाके निकटि इन चारनिका प्रतिबिंब हो है, यहां प्रश्न जो श्री तौ धनाधिक रूप है, अर सरस्वती जिनवानी है, इनका प्रतिबिंब कैसे हो हैं, ताका समाधान श्री अर सरस्वती दोऊ लोक विषें उत्कृष्ट है, तातैं इनका देवांगनाका आकार रूप प्रतिबिंब हो है, बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त है, तातें तिनके आकार हो हैं, बहुरि आठ प्रकार मंगल द्रव्य जिन प्रतिमानिकें निकटि सोभैं हैं ॥९८८॥

पं. टोडरमल्लजी कृत टीका.

इससे विषय स्पष्ट हो जाता है, तीर्थंकर मूर्तिके पार्श्वमें यक्ष व श्रीदेवी, सरस्वती आदिकी मूर्ति रहती है, वह अकृत्रिम चैत्यालयोंमें भी उसी प्रकारकी व्यवस्था हैं, इसलिए बहुतसे लोग यह आपत्ति करते हैं कि तीर्थंकरोंके पार्श्वमें यक्षयक्षीकी मूर्ति नहीं होनी चाहिये, उनका यह भी कहना है कि किसी भी ग्रन्थमें यक्षयक्षीसहित तीर्थंकर मूर्तिका निर्माण होना चाहिये, इस बातके लिए भी कोई आधार नहीं हैं, यह सब कथन निराधार हैं, मनगढंत है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तिने स्पष्टतया प्रतिपादन किया है कि नन्दीश्वरादि द्वीपोंमें भगवान्‌की प्रतिमायें किस प्रकार रहती है। जब भगवंतके पार्श्वमें उन शासन देवतावों स्थापित करना हो, उनकी मूर्तिको स्थापित करनी हो तो उसकी प्रतिष्ठा भी होनी चाहिये, यह प्रतिष्ठा शास्त्रोंसे संबंध रखता है, आगे इसपर विवेचन किया जायगा।

ठेकेदार बनते हैं। यह आश्चर्य नहीं क्या? यह प्रकरण हमने इसलिए दिया है कि भवनत्रिक एवं कल्पवासी देवोंमें भी किस प्रकार जिनेन्द्र भक्ति है इसका सिद्धांतमें स्पष्टीकरण हो जावेगा। अब वहां जिन प्रतिमायें कैसी होती है, इसका भी ग्रन्थकारने वर्णन किया है।

दसतालमाणलक्खणभरिया पेक्खंत इव वदंता वा।
पुरजिणतुंगा पडिमा रयणमया अट्ठअहियसया ॥९८६॥

अर्थ—दश ताल प्रमाण लक्षणनि भरी हैं, तालका प्रमाण बारह अंगुल जानना, बहुरि ते प्रतिमा तीर्थंकर वत् जानो कि देखें हैं, जानो बोलें हैं। बहुरि पुरजन जो पहिला वृषभ तीर्थंकर तीह समान पांचसै धनुष ऊंची हैं, बहुरि रत्नमय हैं ऐसी एकसौ आठ जिन प्रतिमा तिन गर्भग्रहनि विषै एक एक विराजमान हैं ॥९८६॥

पं. टोडरमलजी कृत टीका.

आगेकी गाथा और देखिये—

चमरकरणागजक्खगवत्तीसंमिहुणगेहि पुह जुत्ता।
सरिसीए पंतीए गब्भगिहे सुट्ठ सोहंति ॥
सिरिदेवी सुवदेवी सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खणं।
रूवाणि य जिणपासे मंगलमट्ठविहमवि होदि ॥

त्रिलोकसार ९८७-९८८

अर्थ— बहुरि ते प्रतिमा कैसी है? चमर है हाथ विषै जिनके ऐसे जु नागकुमारनिके वा यक्षनिके बत्तीस युगल तिनकरि संयुक्त जुदे जुदे एक एक गर्भ गृह विषै सदृश रूप बरोबरि पंक्तिकरि भले प्रकार सोभैं हैं।

भावार्थ– बत्तीस नागकुमार वा यक्षिनिके युगल तिनके हस्त विषं चौसठि चमर हैं, तिनकरि वीज्यमान हैं ॥९८७॥

तिन जिन प्रतिमानिके पार्श्व विषै श्रीदेवी अर सरस्वतीदेवी अर सर्वाण्ह यक्ष अर सनत्कुमार यक्ष इनके रूप जे आकार ते तिष्ठे हैं। भावार्थ जिन प्रतिमाके निकटि इन चारनिका प्रति-बिंब हो है, यहां प्रश्न जो श्री तौ धनाधिक रूप है, अर सरस्वती जिनवानी है, इनका प्रतिबिंब कैसे हो हैं, ताका समाधान श्री अर सरस्वती दोऊ लोक विषैं उत्कृष्ट है, तातै इनका देवांगनाका आकार रूप प्रतिबिंब हो है, बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त है, तातैं तिनके आकार हो हैं, बहुरि आठ प्रकार मंगल द्रव्य जिन प्रतिमानिकैं निकटि सोभैं हैं ॥९८८॥

पं. टोडरमल्लजी कृत टीका.

इससे विषय स्पष्ट हो जाता है, तीर्थंकर मूर्तिके पार्श्वमें यक्ष व श्रीदेवी, सरस्वती आदिकी मूर्ति रहती है, वह अकृत्रिम चैत्यालयोंमें भी उसी प्रकारकी व्यवस्था हैं, इसलिए बहुतसे लोग यह आपत्ति करते हैं कि तीर्थंकरोंके पार्श्वमे यक्षयक्षीकी मूर्ति नहीं होनी चाहिये, उनका यह भी कहना है कि किसी भी ग्रन्थमें यक्षयक्षीसहित तीर्थंकर मूर्तिका निर्माण होना चाहिये, इस बातके लिए भी कोई आधार नहीं हैं, यह सब कथन निरा-धार हैं, मनगढंत है।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तिने स्पष्टतया प्रतिपादन किया है कि नन्दीश्वरादि द्वीपोंमें भगवान्की प्रतिमायें किस प्रकार रहती है। जब भगवंतके पार्श्वमे उन शासन देवतावों स्थापित करना हो, उनकी मूर्तिको स्थापित करनी हो तो उसकी प्रतिष्ठा भी होनी चाहिये, यह प्रतिष्ठा शास्त्रोंसे संबंध रखता है, आगे इसपर विवेचन किया जायगा।

उक्तं च--

वसत्यादिस्थभूतादिमापृच्छ्य निसहीगिरा ।
वसत्यादौ विशेत्तस्मात् निर्गच्छेत् सोऽसहीगिरा ॥
अनगार धर्मामृत

इसका सरल अर्थ है कि साधुजन वसति, जिन चैत्यालय आदिमें प्रवेश करते समय उस स्थानमें स्थित भूत नागादि देवोंको निसही शब्दका उच्चारण कर पूछें एवं तदनन्तर प्रवेश करें, इसीप्रकार वहांसे निकलते समय असही शब्दका उच्चारण कर उनसे पूछें व तदनन्तर वहांसे निकलें ।

इस प्रकरणसे यह सिद्ध होता है, मुनि निवास, जिनमंदिर आदि स्थानोंमें शासन भक्त यक्ष यक्षी, नागकुमार आदि देव रहते हैं, उनकी अनुमति लेकर ही अंदर प्रवेश साधुजन करते हैं, निकलते समय भी उनसे पूछकर निकलते हैं, अर्थात् साधु-जन भी शासन भक्तोंका आदर करते हैं, इसमें कोई दोप नहीं हैं ।

कोई यह कहकर उडा देंगे कि यह साधुवोंके कर्तव्यमें प्रति-पादित है, गृहस्थोंके लिए नहीं, यह भी उनका कथन विचार रहित है, क्योंकि जब साधुजनोंके लिए यह कर्तव्य बतलाया गया है, तो गृहस्थ तो उसे अवश्य पालन करते हैं, साधुवोंके सर्व आचारको गृहस्थ पालते हैं, ऐसा अर्थ नहीं, हैं, तथापि सामान्य शिष्ट सम्मत व्यवहार हैं वह गृहस्थोंके लिए भी अनु-करणीय हैं, इसलिए गृहस्थोंकी नित्य क्रियामें भी ओं जयजय निस्सही निस्सही पदका प्रयोग है ।

समवसरणमें प्रवेश करते समय वहांके द्वार स्थित द्वार—पालोंकी अनुमति लेकरही देवेन्द्र और चक्रवर्ति सदृश प्रभाव—

शाली भी प्रवेश करते हैं। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे द्वारपाल देव देवेंद्र व चक्रवर्तिके द्वारा पूज्य हैं, वे बडे हैं, प्रत्युत देवेन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने वहांपर उनकी नियुक्ति की है, फिर भी देवेन्द्र उनका समादर करता है, एक साधे सिपाईके कर्तव्यपालन का समादर मिनिस्टरको भी करना चाहिये, इसका यह अर्थ नहीं है कि मिनिस्टर भी उस सिपाईकी पूजा करता है, शिष्ट संप्रदायका जो नियम है उसे पालनकर नियत व्यवस्थाका समादर करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है, वह पूजा नहीं है, समादर है, इसी प्रकार शासन देवतावोंका समादर करना प्रत्येक श्रावकका कर्तव्य है।

उनकी अनुमति लेना ही उनका समादर है, महापंडित आशाधरजीने अपने विषयको समर्थन करनेके लिए उक्तं च कहकर प्राचीन ग्रन्थका उद्धरण दिया है इससे स्पष्ट है कि पं. आशाधरजीके पहिलेके ग्रन्थकारोंने भी इस प्रकर निसही असही पदोंका प्रयोगकर इस विषयका प्रतिपादन किया है। अर्थात् यह प्रक्रिया बहुत प्राचीन और प्रामाणिक है।

इस प्रकरणसे हमें यह सिद्ध करना है कि जिनालयादिमें (सातिशय) यक्ष-भूत-नागादि देव सदा पूजादि करते हुए रहते है, मुनिजन या श्रावकजन उस स्थानमें प्रवेश करें तो आदर—पूर्वक उनकी अनुमति लेकर ही वहां प्रवेश करें एवं बाहर निकलते हुए भी उनकी अनुमति लेके, यह उनके समादरका प्रकार है, अर्थात् वे सदा समादरणीय हैं।

भगवज्जिनसेनाचार्य कृत महापुराण

पर्व १८ में नमिविनमि कृत निवेदन वगैरे प्रकरणको देखिये।

जिनेन्द्र भगवंतके प्रति जिनके हृदयमें असीम भक्ति है, उनकी सहायता शासन देव भी करते हैं, नाना प्रकारसे उनका उपकार करते हैं। यह प्रसंगमें उपयोगी होनेसे यहांपर दिया जाता है।

भगवान् आदिप्रभु दीक्षा लेकर तपश्चर्या कर रहे हैं आत्म ध्यानमें लीन होकर जब आत्मसाधना कर रहे थे तब उनके चरणोंमें कच्छ महाकच्छ राजाके पुत्र नमिविनमिकुमार पहुंचते हैं, उन्होने भगवंतके चरणोंमें बैठकर प्रार्थना की कि:-

भोगेषु सतृषावेतो प्रसीदेति कृतानती।
पदद्वयेस्य संलग्नौ भेजतुर्ध्यानविघ्नताम् ॥६३॥

त्वयेश पुत्रनप्तृभ्यः संविभक्तमभूदिदं।
साम्राज्यं विस्मृतावावामतो भोगान्प्रयच्छ नौ ॥६४॥

इत्येवमनुबध्नन्तौ युक्तायुक्तानभिज्ञकौ।
तौ तदा जलपुष्पार्घ्यैरुपासामासतुर्विभुम् ॥६५॥

ततः स्वासनकंपेन तवज्ञासीत्फणीश्वरः।
धरणेंद्र इति ख्यातिमुद्वहन्भावनामरः ॥६६॥

ज्ञात्वा चावधिबोधेन तत्सर्वं संविधानकम्।
ससंभ्रममथोत्थाय सौतिकं भर्तुरागमत् ॥६७।

ससपर्यः समुद्भिद्य भुवः प्राप्तः स तत्क्षणात्।
समैक्षिष्ट मुनिं दूरान्महामेरुमिवोन्नतम् ॥६८॥

समिद्धया तपोदीप्त्या ज्वलद्भासुरविग्रहम्।
निवातनिश्चलं दीपमिव योगे समाहितम् ॥६९॥

सादरं च समासाद्य पश्यन्भगवतो वपुः।
विसिस्मिये तपोलक्ष्म्या परिरब्धमघोद्धया ॥१०५॥

परीत्य प्रणतो भक्त्या स्तुत्वा च तं जगद्गुरुं ।
कुमारावित्ति सोपायमवादीत्संवृताकृतिः ॥१०६॥
आदिपुराण पर्व १८

अर्थात्-भोगोंमें आसक्तिको रखनेवाले उन नमि-विनमियोंने भगवंतसे प्रार्थना की भगवन् ! आप प्रसन्न होवें, यह कहते हुए उनके चरणोंमें पडे एवं उनके ध्यानमें विघ्न उपस्थित किया, स्वामिन् ! आपने अपने पुत्र, पौत्रोंको राज्यादिका विभाग कर दे दिया, परन्तु हमें मात्र आप भूल गये, अब हमें भोग द्रव्योंको प्रदान कीजिये, इस प्रकार भगवंतको विवश करते हुए उन राजकुमारोंने उन भोगोंकी इच्छासे ही भगवंतकी पूजा फल पुष्पाक्षतादिकसे की, इस प्रकार भगवंतके ध्यानमें उन्होंने विघ्न उपस्थित किया ।

भगवंतकी तपश्चर्यामें इस प्रकारकी विघ्नवृत्तिके कारण भवनवासी देव नागेंद्र अथवा धरणेंद्रका आसन कम्पायमान हुआ, धरणेंद्रने अवधिज्ञानसे समस्त वृत्तांतको समझ लिया, तदनंतर शीघ्रही भगवंतके समीप आया, वह धरणेंद्र पूजा द्रव्योंको साथमें लेकर भूमिको भेदनकर जब आया दूरसे ही महामेरु पर्वतके समान उन्नत आदि प्रभुको देखा । भगवान् वर्धमान तपश्चर्याकी कांतिसे, वातरहित दीपक के समान निश्चल ध्यानमे मग्न थे, महाध्यान रूपी अग्निमें कर्मोंकी आहुति देनेवाले महायाज्ञिकके समान थें, ऐसे महाध्यानी योगींद्र के समीप पहुंचकर उनकी निश्चलताको देखकर धरणेंद्र विस्मित हुआ, तदनन्तर जगद्गुरुकी तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिके साथ नमस्कार एवं स्तोत्र किया, साथ ही अपनी आकृतीको बदल कर अन्य रूपको धारण किया । तदनंतर भगवंतके चरणोंमें याचनामें मग्न नमि-विनमिको उपायसे इसप्रकार कहा ।

वां युवानौ युवयेवे स्वयुधौ, विकाराकृती ।
तपोवनं क्व चास्मिन प्रशांतमिदमूर्जितम् ॥१०७॥
क्वेदं तपोवनं शांतं क्व युवां भीषणाकृति ।
प्रकाशतमसोरेव संगमो नन्वसंगतः ॥१०८॥
अहो निघतरा भोगा यैरस्थानेऽपि योजयेत् ।
प्रार्थिनामर्थिनां का वा युक्तायुक्तविचारणा ॥१०९॥
प्रार्थयध्वे युवां भोगान्देवोयं भोगनिस्पृहः ।
तद्वां शिलातले भोक्षवाञ्छा विमृश्यतेव नः ॥११०॥
निस्पृहः स्वयमन्यांश्च सस्पृहानेव, कुरुते ।
को नाम स्पृहयेद्धीमान्भोगान्पर्यंततापिनः ॥१११॥
आपातमात्ररम्याणां भोगानां वशगः पुमान् ।
महानप्यचिरादेव यस्तृणवत्पुनर्भवेत् ॥११२॥
युवां चेद्भोग काम्यंतो, व्रजतं भरताधिपम् ।
स हि साक्षादधीशो वर्तते नृपपुंगवः ॥११३॥
भगवान् त्यक्तरागादिसंगो देहेऽपि निःस्पृहः ।
कुतो वामघुना दद्यात् भोगान्भोगस्पृहावतोः ॥११४॥
ततोलमुपरुध्यैनं देवं मुक्त्यर्थमुद्युतम् ।
भुक्तिकामौ युवां यातं भरतं पर्युपासितुम् ॥११५॥

महापुराण १८ पर्व

कुमारो ! आप लोग युवक होते हुए, आयुधपाणी भी हैं अतः विकार-आकारसे युक्त हैं, शांत वातावरण तपोवन कहां? भयंकर आकारधारक तुम कहां ? यह प्रकाश व अंधकारके असंगत समागमके समान है, भोगाभिलाषी जन अयोग्य स्थानमें भी भोगकी अपेक्षा करते हैं यह, अत्यंत निंद्य है, अहो ! याचकोंको युक्तायुक्त विचार ही कहांसे आता है ? आप लोग भोगकी

परेषां बुद्धिमानीश नात्मपूर्णि दुर्गितः ।
पृच्छाद्दतां नु महतां सता प्रायेण सा मृषे ॥१२६॥

. . . .

यदेवि वमतो भर्तुः प्रभुत्वं किं परिच्युतम् ।
पादमूले जटिलानां तस्याशापि चराचरम् ॥१२७॥

. . . .

भरतस्य गुरोरन्यादि किम् नास्यवश महत् ।
गोपदस्य समुद्रस्य समदर्शनमीदृशा ॥१२८॥

. . . .

कुमारोंने कहा कि बहुत बुद्धिमान् समझनेवाले महाभाग ! आपको दूसरोंके कार्यसे क्या प्रयोजन ? आप इस कार्यके बीचमें व्यर्थ क्यों पड़ते हैं ? पूछनेवालेके आप यहांसे चले जाय. इस संबंधमें युक्त क्या है, अयुक्त क्या है ? दोनों हम जानते हैं, आपको हमारा उद्देश मालूम नहीं है, अपना काम करो, दूस-रोंके बीचमें क्यों पड़ते हो, वृद्ध और युवकोंका भेद वयके कार-णसे होता है, वृद्ध होनेके कारण बहुत बुद्धिमान् नहीं हो सकते है, प्रत्युत उस वृद्धावस्थामें बुद्धि शक्ति आदिकी क्षीणता होती है, पुण्यशालियोंको प्रथम वयमें भी अच्छी बुद्धि आती है, युवावस्था दोषदायक नहीं है, वृद्धावस्था कोई गुणदायक नहीं है, विना पूछे सलाह देना यह धृष्टता है, आपसे कोई कार्यकी अपेक्षा हमने नहीं की है, विना पूछे उत्तर देनेवाले दुष्टजीव अपने उपदेशपूर्ण मिष्ट वचनोंसे दुनियाको धोखा देते हैं, बुद्धि-मान् कभी असत्य वचन नहीं बोलते हैं, उनकी कृति व विचार भी दूसरोंकी हानिके लिए नहीं हुआ करते । आपको देखनेपर आप बुद्धिमान् मालूम होते हैं, परन्तु कृति ऐसी नहीं है, भरतके पास जानेकी सलाह दे रहे हो, कहां प्रभु और कहां भरत ?

ऊपर उठिये, स्वामीकी आज्ञानुसार अब आप लोगोंको भोग पदार्थोंको देता हूं।

इस प्रकारके वचनको सुनकर वे दोनों कुमार बहुत प्रसन्न हुए, धरणेन्द्रसे कहने लगे कि वास्तवमें प्रभु हमसे प्रसन्न होकर इष्ट भोगोंको प्रदान करनेवाले हैं, यदि यह बात सत्य होतो कहो, अन्यथा प्रभुकी इच्छा न होते हम उन भोगोंको लेने के लिए तयार नहीं, हमें उनकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार उपायसे उन दोनों कुमारोंको विमानमें बैठाल कर आकाश प्रदेशसे विजयार्ध पर्वतकी ओर ले गया, विजयार्ध पर्वतकी ओर जाते समय बीचके वनप्रदेश, मेरु पर्वतकी आदि का उसने वर्णन किया, विजयार्ध पर्वतका भी विस्तारके साथ वर्णन किया, विजयार्ध पर्वतके ऊपर आनेके बाद वहांपर स्थित विद्याधर लोगोंका भी वर्णन किया, विद्या सिद्ध करनेका क्रम, विधि व फलका भी वर्णन किया, विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण व उत्तर श्रेणीके प्रदेशोंका भी विवेचन किया। वहांके, उद्यानवन आदिकी शोभाका भी वर्णन किया, तदनन्तर वहां ले जाकर दक्षिण श्रेणीका अधिपति नमिको और उत्तर श्रेणीका अधि-विनमिको बनाया वहांकी प्रजावोंने भी धरणेन्द्रकी आज्ञाको तथास्तु कहकर स्वीकृत किया, नमि विनमि भी बहुत संतुष्ट हुए, चिरकालतक वहां राज्य किया।

इस प्रकरणमें खास ध्यान देने योग्य विषय यह है कि प्रभुके चरणोंमें सत्याग्रह करनेवाले नमि विनमिकुमारकी सूचना आसन कंपसे धरणेन्द्रको क्यों मिली ? वह प्रभुका अनन्य भक्त सम्यग्दृष्टि जीव था, दूसरी बात उस धरणेन्द्रने अवधिज्ञानसे सर्व वृत्तांत जान लिया, अवधिज्ञान तो सम्यक्त्वके

देवाः कति प्रकाराः स्युर्देवदेवाः जगन्नुताः ।
सुदेवाश्च कुदेवाश्चा–देवाश्चतुर्विधा इमे ॥४३॥
देवदेवा महान्तो ये तीर्थेशा जगद्धिताः ।
धर्मतीर्थंकरा विश्वज्येष्ठा देवाधिपाश्च ते ॥४४॥
के सुदेवा दृगाढ्याये चतुर्णिकाय निर्जराः ।
जिनभक्ताः सुदेवास्ते शासना देवजातिषु ॥४५॥
कुदेवाः केऽत्र ये देव–गतौ दर्शनवर्जिताः ।
चतुर्णिकाया मध्ये ते कुदेवा भववर्द्धकाः ॥४६॥
अदेवाः केऽत्र ये धूर्तैः स्थापिताः परवंचकैः ।
वंचनायात्र लोकानां भयाद्विरागिणो निजाः ॥४७॥
चंडिका हरिहराद्या विनायकादयो युताः ।
स्त्रीभूषणायुधाद्यैस्ते ह्यदेवाः सुरातिगाः ॥४८॥

धर्म प्रश्नोत्तर अध्याय ३

देव कितने प्रकारके होते हैं ? इसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि देवदेव, सुदेव, कुदेव एवं अदेव इस प्रकार देवोंके चार प्रकारके भेद हैं ।

(१) जगत्‌के द्वारा वंद्य, पूज्य, जगत्‌का हित करनेवाले धर्मप्रवर्तक तीर्थंकर, लोकमें सर्व श्रेष्ठ एवं विश्वज्येष्ठ देवाधिदेव, देवदेव कहलाते हैं जिनको वन्दना पूजा सभी करते हैं।

(२) चतुर्निकाय देवोंमें जो सम्यग्दृष्टि होते हुए जिनेन्द्र शासनके भक्त हैं वे इंद्रादिक एवं शासन देव सुदेव कहलाते हैं।

(३) कुदेव कौन हैं ? देवगतिमें उत्पन्न होकर भी सम्यग्दर्शनसे रहित हैं, वे कुदेव कहलाते हैं, वे संसारको बढ़ाने वाले होते हैं ।

(४) अदेव कौन है ? जो दूसरोंको ठगनेके लिए धूर्तोंके द्वारा स्थापित किये गये हैं वे अदेव हैं, अज्ञानी लोगोंको ठगनेके काम करनेवाले ये सभी संसार समुद्रमें ही पतित होते हैं।

चन्डिका, हरिहर, विनायक, स्त्री भूषण-आयुधादिसे युक्त सभी देव अदेव कहलाते हैं।

इससे विषय स्पष्ट हो जाता है, वृहद्‌द्रव्य संग्रहकारने जिन मिथ्या देवतावों (चन्डिकादि) का उल्लेख किया हैं, वे अदेव या कुदेवकी कोटीके हैं, सुदेव की श्रेणीमें उनकी गणना नहीं होती हैं, परन्तु यहांपर ग्रन्थकार सम्यग्दर्शनसहित शासनभक्त या जिनेन्द्रभक्त देवोंको सुदेवमें गणना करते हैं। वे जिनभक्त हैं, इन्द्रादियोंका इसमें खासकर ग्रहण किया है।

इसमें एक कारण यह भी है देवेन्द्रादि कई देवोंके लिए सम्यग्दृष्टि होनेके कारण दूसरे भवसे ही मुक्तिकी पात्रता उन्हें प्राप्त हो गई है, इस संवंधमें सिद्धांतकार कहते हैं किः—

सोहम्मो वरदेवी सलोगवाला य दक्खिणमरिंदा।
लोयंतिय सव्वट्ठा तदो चुदा णिव्वुदिं जंति ॥५४८॥

त्रिलोकसार-वैमानिकलोकाधिकार

अर्थात् सौधर्म नामक इन्द्र, उसकी पत्नी शची महादेवी, उसके सोम आदि चार लोकपाल, सानत्कुमार आदिक दक्षिण इन्द्र, सर्व लोकांतिक देव, सर्वार्थसिद्धिके देव, ये सभी उक्त पर्यायसे च्युत होकर मनुष्य पर्यायको पाते है, एवं वहांसे निर्वाणको प्राप्त करते हैं, उपर्युक्त सभी देव एक भवावतारी है।

इस प्रकार जिनदेवोंके संसारका अंत आ चुका है, सम्यग्दृष्टि हैं, जिनशासनके भक्त है, ऐसे देवोंका आदर करनेमें नाना प्रकारसे वहाना वाजी करें, सम्यग्दर्शन मलिन होनेका भय वतावे तो क्या फिर आगमकी अश्रद्धा करनेवाले शासन

भक्तोंको मिथ्यादृष्टि बतानेवाले इन (?) का समादर क
जरा विवेकी जन गंभीरतासे विचार करें !

शुभचंद्राचार्यकृत–सप्तपरमस्थान पूजा

सप्तपरमस्थान नामक व्रत है, सज्जातित्व, सद्गृहस्थत
पारिव्राज्य, सुरेंद्रता, साम्राज्य, आर्हत्य पद, एवं निर्वाण इ
प्रकार लोकमें सात सर्वोच्च स्थान हैं, इनको जो प्राप्त क
निर्वाण प्राप्त करता है वह सातिशय योगी है, सुरेंद्रता ए
साम्राज्य सबको प्राप्त हों या न हों बाकीके परमस्थानोंको
प्राप्त करके ही मोक्षलाभ करना पडता है।

सप्तपरम स्थानकी प्राप्तिके लिए सप्तपरम स्थान नामक
व्रत करना होता है, इसमें अलग अलग सात उपवास करने होते
है, व्रतमें उपवासका अनुष्ठानकर सप्तपरम स्थानोंकी पूजा की
जाती है, इतर परमस्थानोंकी पूजाके साथ सुरेंद्रता नामक परम
स्थानकी पूजा आचार्यने इस प्रकार करनेका विधान बताया है।

महर्द्धिगुणसम्पूर्णं सुरकोटिसमन्वितं ।
सुरेन्द्रपदमित्याहुः संयजे चाष्टधार्चनैः ॥

अर्थात् महान् ऋद्धि और महान् गुणोंसे युक्त करोडों देव
परिवारके साथ रहनेवाले स्थानको सुरेन्द्र पद कहते हैं, मैं
सुरेन्द्र पदकी पूजा मैं अष्टद्रव्योंसे करता हूं।

यहां अब लोग कहेंगे कि सुरेन्द्रपदकी भी पूजा कराई गई,
आचार्य कहते हैं कि मोक्षसिद्धि के लिए सुरेन्द्र पदकी प्राप्ति भी
आवश्यक है, उसकी भी पूजा इस व्रतमें करनी चाहिये, जिससे
[illegible]स्थानोंकी प्राप्ति होवे।

—०००—

पांडवपुराण:—शुभचंद्राचार्य विरचित.

रातकी समाप्ति होनेपर धनंजयके दूतने किसीसे पूछा कि जयाद्रका रथ कैसे पहचाना जायगा ? तब उसने कहा कि राजावोंने एक बडा व्यूह रचा है, उस विषम व्यूहमें कोई देव भी प्रवेश नहीं कर सकता है, उस वृत्तको सुनकर अर्जुनने कहा कि यदि उस व्यूहकी रक्षा देव भी करेंगे तो भी मैं जयाद्रको जयकी इच्छासे मारुंगा, ऐसा कहकर वेदीमें बडा दर्भासन बिछाकर वह बैठ गया ॥६८–८१॥

पांडवपुराण पर्व २०

आगेका प्रकरण देखिये:—

स्थितस्तत्र स धैर्येण दध्यौ शासनदेवताम् ।
आराधितो मया धर्मो जिनदेवः सुसेवितः ॥८२॥
गुरुश्च यदि प्राकट्यं भज शासनदेवते ।
इति ध्यायञ्जिनं चित्ते स्थितोऽसौ स्थिरमानसः ॥८३॥
समायासोत्तदा पार्थं परशासनदेवता ।
जजल्पेति हरिं पार्थौ सा सुरी सुखकारिणी । ॥८४॥
नरनारायणौ यत्र श्रीनेमिश्च महामनाः ।
तत्राहं प्रेष्यकारित्वं भजामि भवतामिह ॥८५॥
युवां च यच्छतां तूर्णं ममादेशं मनोगतम् ।
अवोचतां तदा तौ तं श्रेष्ठं वैरिवधोद्भवं ॥८६॥
तच्छ्रुत्वाहं सुरीशोऽत्रमागच्छन्तं मया समम् ।
युवां सेत्स्यंति कार्याणि भवतोर्विपुलानि च ॥८७॥
तया समं जगामाशु पार्थस्तेन सुमानसः ।
यत्र सौख्या करी रम्या कुवेरस्नानवापिका ॥८८॥

हेमपद्मसमाकीर्णा हंससारससद्रवा ।
मणिसोपान संरुद्धा चलत्कल्लोलमालिका ॥८९॥
देवीवभाण पार्थेशमेतस्य विपुले जले ।
वसतः फणिनौ भीमौ फणाफुत्कारकारिणौ ॥९०॥
भित्वा भयं नरेंद्राद्य वापिकां प्रविश त्वरा ।
गृहाण नागयुगलं संशल्यमिव विद्विषः ॥९१॥
निशम्य निपुणः पार्थः प्रविश्य वरवापिकाम् ।
जग्राह भुजगद्वंद्वं सर्वद्वंद्वनिवारकम् ॥९२॥
एको यातु शरत्वंते द्वितीयस्तु शरासनं ।
नरनारायणौ तुष्टौ तच्छ्रुत्वा सशरासनौ । ॥९३॥

पांडवपुराण पर्व २०

वेदिकाके ऊपर धैर्यसे वैठकर अर्जुनने शासन देवताका स्मरण किया, मैंने यदि जिनधर्मकी आराधना की हो जिनेश्वरकी यदि सेवाकी हो और गुरुकी सेवा की हो तो हे शासनदेवते! तुम प्रकट हो जावो ! इस प्रकार जिनेश्वरको चित्तमें ध्याता हुआ अर्जुन स्थिर चित्त होकर वैठा, उस समय उत्तम शासनदेवता अर्जुनके पास आ गई, और सुख देनेवाली वह देवता कृष्ण और अर्जनसे वार्तालाप करने लगी, हे अर्जुन ! श्रीकृष्ण और महामना नेमिप्रभु जहां हैं वहां उस वंशमें मैं आपकी सेवा करनेके लिए तयार हूं, अर्थात् आपकी आज्ञा पालन करनेके लिए प्रस्तुत हूं, आप अपने मनोगत इच्छाको व्यक्त कीजिये, तब इन्होंने वैरिवधके कार्यको प्रस्तुत किया, उसे सुनकर देवीने कहा कि 'मेरे साथ आप दोनों चलिये, आपके समस्त कार्य सिद्ध होंगे, तब वह अर्जुन उसके साथ कुबेरवापिकाके पास गया, वह सरोवर सुवर्ण कमलोंसे युक्त, हंस व सारस पक्षियोंके कलकलसे शोभित एवं रत्नमय सोपानोंसे अलंकृत था.

ता अर्जुनसे कहने लगी कि इस वापिकाके अगाध जलमें णालोंसे फूत्कार करनेवाले महाभयंकर दो सर्प विद्यमान हैं, जन्! आप भयका त्यागकर शीघ्र इस सरोवरमें प्रवेश करो र शत्रुवोंके शल्यके स्वरूपस्थित उन नागोंको ग्रहण करो।

देवताके वचनको सुनकर अर्जुनने उस सरोवरमें प्रवेश कया, एवं सर्व संघर्षको दूर करनेवाले उन सर्पोंको पकड लिया नमेंसे एक शर बनेगा, और दूसरा धनुष बनेगा, इसे सुन-र नर नारायण दोनों ही प्रसन्न हुए।

इससे शासन देवतावोंका अस्तित्व व उनके कार्यका ज्ञान च्छीतरह हो जाता है।

कोई कहेंगे कि अर्जुनने जिनेन्द्र भगवंतका भक्तिसे ध्यान कया, तब वह शासन देवता आ गई, सो इसमें शासन देवताके त्कारका क्या संबंध है? परन्तु ध्यान देनेकी बात यह है कि अर्जुनने जिनेन्द्र भगवंतका ध्यान करते हुए भी शासन देवताको ही आव्हान किया, जिनेन्द्र भगवंतसे याचना नहीं की, कि मेरा अमुक कार्य है भगवन्! आप सिद्ध करें। अर्जुन सदृश मोक्ष-गामी जीव यह अच्छी तरह जानता था कि जिनेन्द्र भगवंत कुछ लेने—देनेवाले नहीं है, वे वीतरागी हैं, परन्तु शासनदेवता हमारी इष्ट सिद्ध कर सकती है, सो शासन देवतासे ही उन्होने कहा कि हमारा कार्य करो।

इससे यह भी सिद्ध होती है कि शासन जिनेन्द्रभक्तोंकी अभिलाषाकी पूर्ति करती है, हालां कि उस भक्तका दैव अनुकूल होना ही चाहिये। दैवकी अनुकूलता होनेसे यह शासनदेवता उस कार्यकी पूर्तिमें निमित्त बन जाती है।

तीसरी बात जिनेन्द्र भक्त यदि शासन देवतासे कुछ, कामना करता है, तो भी उसकी पूर्ति शासनदेवता करती है,

यद्यपि प्रतिफलकी अभिलाषा करना सम्यग्दर्शनके म्लान हेतु हैं, तथापि उस कारणसे सम्यग्दर्शनसे पतित नहीं हो सकता है।

सागारधर्मामृत अध्याय ३ रा श्लोक ७-८

दर्शनिक श्रावकका लक्षण कहते हुए पं. आशाधरजीने यहांपर दो श्लोकोंका कथन किया हैं।

> पाक्षिकाचारसंस्कार-दृढीकृतविशुद्धदृक् ।
> भवाङ्गभोगनिर्विण्णः परमेष्ठिपदैकधीः ॥७॥
> निर्मूलयन्मलान्मूलगुणेष्वग्रगुणोत्सुकः ।
> न्याय्यां वृत्ति तनुस्थित्यै तत्वन् दर्शनिको ॥८॥

इसका सरल अर्थ यह हैं कि पाक्षिकके आचारोंके संस्कारसे जिन्होंने अपने विशुद्ध सम्यग्दर्शनको सदृढ किया है, संसारके भोगोंसे अत्यासक्ति नहीं रखता है, अर्हंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय व सर्व साधुवोंके चरणोंमें एकनिष्ठ चित्तको रखनेवाला हैं, सम्यग्दर्शनके संपूर्ण दोषोंको दूर करता हुआ, अष्टमूल गुणोंको भी निरतिचार पालन करता है, शरीरके स्थिति के लिए जो न्यायपूर्ण आजीविकाकी वृत्तिको धारण करता है, वह दर्शनिक कहलाता है ॥७-८॥

इन दो श्लोकोंमें परमेष्ठिपदैकधीः जो पद आया हैं उसका अर्थ करते हुए ग्रन्थकर्ताने स्वयं लिखा है कि पंचपरमेष्ठियोंको चरणोंमें एकनिष्ठ भक्ति रखनेवाला दर्शनिक प्रतिमाधारी-

आपदाकुलितोपि दर्शनिकस्तन्निवृत्यर्थं शासनदेवतादीन् कदाचिदपि न भजते, पाक्षिकस्तु भजत्यपि इत्येवमर्थमेकग्रहणम् ।

अर्थात् आपत्तिसे आकुलित होनेपरभी उस आपत्तिकी निवृत्तिके लिए दर्शनिक प्रतिमाधारी शासन देवतावोंकी पूजा

हीं करता है, यहांपर भजते पद है, भज यजने अथवा पूजन त अर्थमें प्रयुक्त होता हैं, पूजन करनेमें पूज्यभाव होता है, स दर्शनिक उन शासन देवतावोंको पूज्य समझकर पूजा नहीं रता हैं, पाक्षिक तो करता है। अर्थात् पाक्षिकके लिए शासन वता पूजा आशाधरजीकी दृष्टिमें निपिद्ध नहीं है, ग्रन्थकारके भिप्रायको पूर्वापर कथन संबंधको जोडकर देखना चाहिये।

श्रावकेणापि पितरौ गुरूराजाप्यसंयताः।
कुलिंगिनः कुदेवाश्च न वंद्याः सोपि संयतैः॥
अनगारधर्मामृत अ. ८ श्लो ५२

अर्थात् संयत श्रावकोंको असंयत माता पिता, गुरु, राजा, कुलिंगी कुदेवोंकी वन्दना नहीं करनी चाहिये, वंदना करना हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर होता है, उसमें भी स्तुति पूजा आदि होनेसे पूज्यताका भाव आ जाता है, इसलिए असंयतों की वन्दना नहीं करनी चाहिये यह स्पष्ट वात है। इसके अर्थमें आशाधरजी स्पष्ट लिखते है कि कुलिंगिनः तापसादयः पार्श्व-स्थादयश्च, कुदेवाः रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च. अर्थात् कुलिंगी तपस्वी, रुद्रादि कुदेव, शासन देवतादिको संयत श्रावक वन्दना न करें, अर्थात् जिनेन्द्रके समान पूज्य मानकर उन देवतावोंको वन्दना करना उचित नहीं है, यह अभिप्राय यहांपर ग्रन्थकारको अभीष्ट हैं, अन्यथा उन्होंने इसी प्रकरणमें लोकानुवर्ति विष-यका जो निरूपण किया है उसका क्या अर्थ होगा ? उनका कहना हैं कि—

लोकानुवृत्तिकामार्थभयनिश्रेयसाश्रयः।
विनयः पंचधावश्यकार्योन्त्यो निर्जरार्थिभिः॥
अनगारधर्मामृत अ. ८ श्लो ४८

अर्थात् विनय पांच प्रकारसे विभक्त है। लोकानुवृत्ति, काम, अर्थ, भय, एवं निश्रेयस इसप्रकार पांच विनय है। लोकानुवृत्ति, काम अर्थ, भय ये लौकिक विनय है, लौकिक अर्थादिकी इच्छासे की जाती हैं, परन्तु अन्तिम मोक्ष विनय तो कर्म निर्जराके लिए कारण है, इसलिए कर्म निर्जराकी इच्छा रखनेवाले श्रावकोंको अन्तिम विनय तो अवश्य करनी चाहिये, साथ ही व्यवहार मार्गमे लोकानुवृत्ति आदि विषयोंका भी अनुष्ठान करना चाहिये।

यह व्यवहार है, शिष्टाचार है, यदि लौकिक व्यवहारमें रहना हो तो श्रावकको लोकमान्य व्यवहारका पालन करनाही चाहियें।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शासन देवतावोंको पूज्य मानकर अपनी लौकिक आपत्ति आदिको दूर करनेकी दृष्टिसे उपासना नहीं करनी चाहिये, अपितु शासनभक्त समझकर उनका आदर सत्कार करनेमें कोई हानि नहीं है, और न उसका सम्यक्त्व मलिन होता है, यह अर्थ पं. आशाधरजीको मान्य था, इसीलिए उन्होने स्वरचित प्रतिष्ठा पाठ ग्रन्थमें जगह जगहपर शासन देवतावोंके सत्कारका प्रतिपादन किया है, जिसे हम उस प्रकरणमे उध्दृत करेंगे।

श्री रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण पर्व ६७

सर्वत्र भरतक्षेत्रे सुविस्तीर्णे महामते।
अर्हच्चैत्यैरिदं पुण्यैर्वसुधासीदलंकृता ॥१०॥
राष्ट्राधिपतिभिर्भूपैः श्रेष्ठिभिर्ग्रामभोगिभिः।
उत्थापितास्तदा जैनाः प्रासादाः पृथुतेजसः ॥११॥

अधिष्ठिता भृशं भक्तियुक्तैः शासनदेवतैः ।
सद्धर्मपक्षसंरक्षाप्रवणैः शुभकारिभिः ॥१२॥

रावण रामचन्द्रको जीतनेके लिए बहुरूपिणी विद्याको सिद्ध करने जा रहा है, शांतिनाथ जिनालयमें पूजा आदि कराने का भार मंदोदरी के ऊपर रखा, नौकरोंको बुलाकर आदेश दिया कि शांतिनाथ जिनालयकी उत्तम तोरण आदिसे सजावट की जाय, गौतम गणधर श्रेणिकसे कहते हैं, हे मगधेश ! वह सुर और असुरोंके द्वारा वन्दित बीसवें मुनिसुव्रत नाथ स्वामीका महाभ्युदयकारी समय था, उस समय यह लंबी चौडी पृथ्वी (भरतक्षेत्र) अर्हंत भगवान्‌की पवित्र प्रतिमावोंसे अलंकृत थी, देशके अधिपति राजावों तथा गावोंका उपभोग करनेवाले सेठोंके द्वारा जगह जगह देदीप्यमान जिनमन्दिर खडे किये गये थे, ये मन्दिर समीचीन धर्मके पक्षकी रक्षा करनेमें निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासन देवतावोंसे अधिष्ठित थे' आगेके श्लोकसे कहते हैं कि देशवासी लोग सदा वैभवके साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे ऐसे जिनालय स्वर्गके विमानोंके समान सुशोभित होते थे ॥१३॥

इस प्रकरणसे यह सिद्ध होता है कि बहुत प्राचीनकालसे जिन मन्दिरोमें शासन देवतावोंके अधिष्ठानकी परिपाटी थी, और शासन देवतावोंके साथ ही जिन प्रतिमावोंको विराजमान करते थे ।

शासन देवतावोंको ग्रन्थकारने भक्ति संयुक्त और जिन मार्गकी रक्षा करनेमें समर्थ ऐसा लिखकर उनके यथार्थ स्वरूपका दिग्दर्शन कराया है, साथमें उन्हें समीचीन धर्मकी

दियोंमें उत्पन्न नहीं होता है, एतन्मात्रसे वहां सम्यग्दर्शनकी त्पत्ति नहीं हो सकती हैं यह कहना अनुचित है।

भवनवासी देवोंमें कौनसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती इसका ग्रन्थाधार देखियेगा।

'विशेषेण भवनवासिव्यंतरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां सौधर्मैशानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं नास्ति। तेषां पर्याप्त-नांमौपशमिकं क्षायोपशमिकं चास्ति'।

सर्वार्थसिद्धि अ. १ पृ. १०

अर्थात् भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषवासी देव व देवियोंको वं सौधर्म-ईशान-कल्पवासी देवियोंको क्षायिक सम्यक्त्व नहीं ोता है, उन्हें पर्याप्तक अवस्थामें औपशमिक, क्षयोपशमिक म्यक्त्व होता है, इससे उस पर्यायमें सम्यक्त्व प्राप्तिका षेध नहीं है यह स्पष्ट होता है।

अब वहांपर सम्यक्त्वोत्पत्तिका क्या निमित्त हैं, इसका ी आचार्यने विचार किया है।

देवानां केषांचिज्जातिस्मरणम्, केषांचिद्धर्मश्रवणम्, केषांचिज्जिनमहिमादर्शनम्, केषांचिद्देवर्द्धिदर्शनम् एवं ागानतात्।

सर्वार्थसिद्धि.

देवोंको सम्यग्दर्शन उत्पत्ति होनेके निमित्तोंमें किसीको ातिस्मरण है, किसीको धर्म श्रवण है, किसीको जिनमहिमा र्शन है, और किसीको देवोंकी ऋद्धिका दर्शन है।

इससे भली-भांति सिद्ध होता है कि वहां सम्यग्दर्शन ोता है, तभी तो सम्यग्दर्शन किस निमित्तसे होता है इसका तिपादन किया है।

साथमें यह भी सुतरां संभव है कि उन्हे ये निमित्त मिल भी जाते हैं, कारण वे शासनदेव शासन भक्तिवश देवेन्द्र अथवा ऋद्धिधारी देवोंके साथ तीर्थंकरोंके पंचकल्याणिक अवसरोंमे नन्दिश्वरादि द्वीपोमें, एवं समवरणादिकोंमें जाते ही रहते हैं, ऐसी स्थितिमें वहांपर उन्हे अपने पूर्वभवका स्मरण भी हो सकता है, धर्मश्रवण करते ही हैं, जिनमहिमाको भी देखते है, यदा कदा महर्द्धिक देवोंकी ऋद्धिका भी उन्हे दर्शन होता है सर्व प्रकारके कारण मिलते हैं, फिर सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होनेमें क्या वाधा हैं ? कल्पना मात्रसे निषेध नहीं किया जा सकता हैं, क्यों कि आगम तो उसका समर्थन करता हैं।

कोई कहेंगे कि अमुक देवको सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति अमुक समयमें हुई ऐसा कोई उल्लेख हो तो आगमका आधार वताईये, यह प्रश्न उचित नहीं है सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका उल्लेख हर जगह हर व्यक्तिका करना संभव नहीं हैं, हां! उनके कार्योंसे कृतिसे निश्चित रूपसे वे सम्यग्दृष्टि हैं ऐसा कह सकते हैं, आचार्योंने भी उन्हे' शासनभक्त, धर्मरक्षक, भक्ति संयुक्त, आदि पदोंसे उल्लेख किया है तथापि आप एक वाक्य तो कहीं वतलाईये कि इन शासनदेवोंको सम्यक्त्वकी उत्पत्ति नहीं हो सकती हैं अतः वे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं।

दूसरी वात सम्यग्दृष्टि देवोंको अवधिज्ञान होता है, मिथ्यादृष्टि देवोंको विभंगज्ञान होता है, यह भी हम पहिले उल्लेख कर चुके हैं।

गोम्मटसारमें इन भवनवासी आदि देवोंके अवधिज्ञानकी मर्यादा जघन्य व उत्कृष्ट प्रमाणसे वताई गई है, उसे भी देख लेवें।

पणवीस जोयणाइं दिवसं तं चयकुमारभोमाणं ।
संखेज्जगुणं अवरं वहुगं कालं तु जोइसिये ॥४२६॥
गोम्मटसार जीवकांड

भवनवासी व्यंतरोंके अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र जघन्यसे २५ योजन है, काल १ दिनमें कुछ कम है, और ज्योतिष देवोंका क्षेत्र इससे असंख्यात गुण अधिक काल भी इससे अधिक है ।

इसी प्रकार आगेकी गाथावोंमें उन भवनवासी आदि देवोंके अवधिज्ञानसंबंधी क्षेत्र, काल, विषय आदिका स्पष्टीकरण किया है, इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन भवनवासी आदि देवोंमें अवधिज्ञान होता है जो सम्यक्त्वसहित है। अतः वे सम्यग्दृष्टि होते हैं।

सम्यक्त्व मार्गणामें भवनत्रिकमें होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंकी संख्या वतलाई गयी है।

सोहम्मदासाणं जोयिसिवणभवणतिरियपुढवीसु ।
अविरदमिस्से संखं संखासंखं गुणसासणेदेसे ॥६३७॥
गोम्मटसार जीवकांड

सौधर्म ईशानके ऊपर पांच युगल और ज्योतिषी, व्यंतर भवनवासी, तिर्यंच और सात नरककी पृथ्वी इन १६ स्थानोंके अविरत सम्यग्दृष्टियोंकी संख्या और मिश्रकी संख्या असंख्यात गुणितक्रमसे निकालना, और तिर्यंचसंबंधी देशसंयमीकी संख्या असंख्यात गुणानुक्रमसे निकालना ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भवनवासी व्यंतर देवोंमें भी सम्यग्दृष्टि जीव रहते हैं, तभी उनकी संख्या आगमोंमें कही गई है ।

इस विषयमें अन्य विद्वानोंका भी अभिप्राय देखियेगा ।

—०-०—

जिनपक्षधर सम्यग्दृष्टि ही हैं।

(ले.-[illegible] जैन, एम ए. शास्त्री [illegible])

जिनेन्द्र भगवान्‌के सेवक, शासनके [illegible] [illegible] देवोंको मिथ्यादृष्टि मानना [illegible] है, इस तरह जो मनुष्य भी भगवानकी पालकी उठाते, [illegible] ढोरते, चमर ढोरते, मन्दिरमें पुजारी लगाते अथवा अन्य देखभाल या व्यवस्थाके कार्य करते हैं वे भी मिथ्यादृष्टि हो जायेंगे।

पञ्चमकालमें उत्पन्न मनुष्य अधिकांशमें नरकतिर्यञ्च गतियोंसे आते हैं और इन्हीं गतियोंमें जाते हैं तो क्या सभी पञ्चमकालीन मनुष्योंको मिथ्यादृष्टि, जिनधर्मबाह्य अथवा सम्मानके अयोग्य मान लेना चाहिये ?

मिथ्यात्व प्रकृतिके कारण किन्हीं विशेष निकायों में जन्म लेनेवाले सभी देव मिथ्यादृष्टि ही हैं, ऐसा कहना जिनवाणी और देवोंका अवर्णवाद करना है, पुराने सम्यग्दृष्टि देवोंके उपदेशसे जिनेन्द्र भगवान्‌को कुलाधिदेवता मानकर भी पूजनेवाले देवोंमें जिनेन्द्र भगवान्‌के प्रति श्रद्धा नहीं है अथवा नहीं होगी ऐसा सोचना किस शास्त्रके आधारपर है यह समझमें नहीं आया।

किन्हीं देवोंको श्रीजिनेन्द्र भगवानके यदि निकट नहीं अपितु जिनभवनके प्रवेशद्वार पर भी स्थान मिला तो इससे वह मिथ्यादृष्टि कैसे बन गया ? प्रवेशद्वारकी रक्षा करना क्या मिथ्यात्व है ? यदि ये देवता जिनशासनसे, जिनधर्मियोंसे अथवा जैनत्वसे अनुराग या वात्सल्य रखते हैं, और कोई भव्य जैन इनका इनके योग्य सत्कार करता है, तो इसमें जिनेन्द्र भगवानकी पूजाका महत्व कहाँ कम हो जाता है ? अथवा इन देवताओंकी जिनेन्द्र भगवानके पार्श्वमें खडे होने या जिनभक्त होनेकी किसी पन्थमें या शास्त्रमें मनाही है ?

मनुष्य गतिसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसलिए सभी मनुष्य देवोंसे बड़े हैं, यह कहना समीचीन नहीं है। सभी देवोंके उच्च गोत्रका उदय रहता है। परन्तु सभी मनुष्योंके नहीं, अतः मनुष्यका उत्कृष्टत्व सर्वथा अथवा सार्वकालिक नहीं है। अर्हन्तोंकी पूजा भी अवनत नहीं होती परन्तु अर्हन्तमें साधर्मीका उचित सम्मान नहीं होगा यह कहाँ लिखा है? सम्मानके कारण तो मन्द कषाय, भद्र परिणाम, जिनधर्मपालन साधर्मीवात्सल्य अनुकम्पा आदि अनेक गुण भी हैं, जो इन देवोंमें पर्याप्त मात्रा होते हैं।

चित्रकला, मूर्तिकला, आदि ललित कलाओंके ऐतिहासिक अध्ययनसे स्पष्ट पता चलता है कि महापुरुषोंके चित्र एवं मूर्तियोंके बाद देवी देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण हुआ। देखिये "कलादर्शन", [illegible] नई। भारतमें तीर्थंकरोंकी मूर्तियोंके समकालीन ही देवी देवताओंकी मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। सबसे प्राचीन तीर्थंकर मूर्ति सिन्धुघाटीकी सभ्यताकी खुदाईमें मोहनजोदड़ोमें मिली है। परन्तु इसी खुदाईमें अनेक देवी देवताओंकी मूर्तियां भी मिली हैं।

वास्तवमें अन्तरंग विकास से पूर्व बाह्य विकास ही होता है। इसलिए देवी देवताओं, यक्षयक्षिणियों आदिकी मूर्तियोंका निर्माण तीर्थंकर मूर्तियोंके बाद का नहीं माना जा सकता। भट्टारकों के सिर उनका उत्तरदायित्व बताना तो केवल अपरिचय दिखाना है। सिन्धु घाटीके अनन्तर—

१) "अम्बिकाकी मूर्तियां उदयगिरि, खण्डगिरि की नव-मुनि गुफा तथा ढंककी गुफामें पाई जाती हैं, जो कमसे कम ईसासे दो सौ वर्ष पूर्वकी हैं।

यदि मन्दिरजीमें तीर्थंकरोंकी मूर्तियां हटाकर इन देवी देवताओंकी मूर्तियां ही स्थापित कर दी जाती तब तो इनकी मान्यता करनेवालोंपर मिथ्यादृष्टि होनेका आरोप उचित था, अपने अपने स्थानपर जब सब हैं तब व्यर्थ किसीको भोलेभाई, मिथ्यादृष्टि, या बेपेंदीका आदि नाम देना मात्र कषायावेश है, यह भी अत्यन्त आश्चर्य है कि असंयतकी वन्दना न करनेके लिए शास्त्र प्रमाण देनेवाले कुछ आदरणीय बन्धुगण असंयत को सद्गुरु देव कहकर क्यों अपने सम्यक्त्वमें मल उत्पन्न करते हैं ?

इन पैदायशी मिथ्यादृष्टियोंमें जिनेन्द्र भगवानपर श्रद्धा इसीसे सिद्ध हो जाती है कि इन्हें मूर्तियोंपर भी स्थान मिला है। द्वारपर रहनेवाले महलोंमें पहुंच गये तो यह उनकी जिनेन्द्र भक्तिका ही तो प्रताप है, सेवकसे सेव्य, उपासकसे उपास्य, पूजकसे पूज्य एवं भक्तिसे भगवान् बनने की सनातन प्रक्रियामें हम सभीको आगे बढ़ते रहने की भावना रखनी चाहिये, और जो जा रहे हैं उन्हें सन्मान देनाही चाहिये ।

एक बन्धुने लिखा है-"हमारे यहां देवोंका मानवोंसे अधिक महत्व नहीं हैं, क्यों कि पञ्चपरमेष्ठी देव नहीं मानव होते है। जैन सन्देश, ४ मार्च, परन्तु इसी पृष्ठपर ऊपर लिखा गया है, "मूर्तियां देवोंकी बनती थी, देवोंमें होते हैं अरिहन्त और सिद्ध।" यह स्ववचन विरोध कैसा ? यदि देव श्रेष्ठ नहीं होते तो अरिहन्त और सिद्धोंको देव उपाधिसे आप क्यों भूषित करते हैं ? बधाई ।

एक स्थानपर फिर लिखा गया है कि "आचार्य उपाध्याय और मुनियोंको मूर्तरूप देनेका विधान जैन प्रतिमा शास्त्रोंमें नहीं मिलता। परन्तु बन्धुवर, इनकी प्रतिष्ठाका विधान तो

जैन शास्त्रोंमें मिलता ही है, इससे स्वयमेव इनकी मूर्तियोंका निर्माण सिद्ध है। देवगढ आदिके कला भाण्डारोंमें इनकी मूर्तियां प्राप्त है ही।

पुनः लिखा गया है कि "यदि तुम्हे प्रभावना करनेवालेको ही पूजना है तो सौधर्म इन्द्रको ....।" सो वस्तुदर सौधर्म इन्द्र ही क्या सभी कल्पोपन्न एवं कल्पातीत विमानोंके इन्द्र एवं अहमिन्द्रोंको मंत्रोंद्वारा अर्घ्य तथा आहुतियां प्रदान की जाती हैं। "महाहोम विधान" संग्रहकर्ता क्षुल्लक श्री १०५ सुमतिसागरजी महाराज प्रकाशिका-सौ चंचलाबाई रा. शाह, अन्धेरी, बम्बई.

जिनभक्त देवी देवताओंको कुदेव कहना भी असंगत है। कुदेव वे हैं, जो जिनेन्द्र देवके मार्गसे दूर हैं, जैन शासनके विरोधी हैं, जैन धर्मके निन्दक हैं तथा जिनेन्द्रदेवकी शरणसे दूर रहते हैं, इन देवोंने तो अपनेको जिन-चरण-शरण बनाया है इसलिए ये जिनधर्म और सम्यक्त्वके आयतन ही है,अनायतन वे हो सकते हैं, जो मन्दिरमें पूजाके लिए नहीं जाते अपितु मूर्तियोंके सन् संवत् देखनेके लिए ही पहुंचते हैं, अथवा किसी पुस्तकमें एक चित्र विशेष के छप जानेके कारण महाव्रती के विषयमें यद्वातद्वा विचार लाते हैं।

निःसन्देह पञ्चगुरु चरण शरण किसीभी भव्यके जीवनके लिए श्रेष्ठ उपलब्धि है। यदि कोई निर्भय निर्द्वन्द्व होकर समग्र जीवन इसी शरणमें रहता है तो उसके समान भाग्यशाली दूसरा नहीं। पर जीवनके झंझावातोंमें प्राणी की नैया डगमगाती तथा डूबनेको हो जाती है, उस समय पञ्चगुरुके चरणोंकी शरण सुरक्षित बनी रहे मात्र इसी प्रयोजनसे इन देवी देवताओंकी अनुकम्पा बडी सहायक हो जाती है। इसलिए यदि कोई ऐसी सहायता प्राप्त करता है अथवा उसका मार्ग

ताता है तो कृपया उसे वेपंदीका मत कहिए। उसको पेंदीमें
हीं उसके पवित्र हृदयमें पञ्चपरम गुरुओंके चरण ही निर-
तर विराजमान हैं।

—oo—

अब प्रतिष्ठा शास्त्रोंमें इन शासन देवतावोंकी स्थिति
क्या है इसपरभी विचार करना आवश्यक है, कुछ हमारे बन्धु
कहते हैं कि इन देवोंकी मान्यता प्रतिष्ठा विधितक ही सीमित
होनी चाहिये, अन्य नित्य पूजादि विधिमें इनकी आवश्यकता
नहीं है, वे धर्मबंधु इस विषयपर तडजोड (*Compro-
mise*) करना चाहते हैं कि कुछ स्थानोंमें इनको मान लो, कुछ
स्थानोंमें इनको छोड दो, इसप्रकार उनका विचार प्रतीत होता
है, परन्तु आगमकी मान्यताके विषयमें तडजोड (तस्वीया)
करनेका प्रश्नही उपस्थित नहीं होता है, और न किसीको उस
प्रकारका अधिकार है, यदि प्रतिष्ठा विधि सदृश महान् यज्ञमें
इनकी मान्यता हो सकती है तो सामान्य पूजामें इनकी मान्यता
करनेमें क्या हानि है ? एक जगह आदरणीय है वह अन्यत्र
अनादरणीय क्यों ? इसलिए यह तर्क कुछ समझमें नहीं आता
है, अतः प्रतिष्ठा विधिके समान ही अन्यत्र पूजन विधिमें भी
दशदिक्पालक आदिके समान अन्य शासन देवतावोंका भी योग्य
समादर करना समुचित हैं।

वसुनंदि प्रतिष्ठसारसंग्रह

प्रचलित अनेक प्रतिष्ठापाठोंमें यह बहुत प्राचीन
प्रतिष्ठापाठ है, वसुनन्दि सिद्धांतचक्रवर्तिके द्वारा विरचित
वसुनन्दि श्रावकाचार भी है, प्राकृतमें है, इसलिए वसुनन्दि
आचार्य सैद्धांतिक विषयमें कितने उद्भट थे, विद्वान् थे

इसका अनुमान किया जा सकता हैं, वसुनन्दि आचार्यके संबंधमें सर्वत्र मान्यता है।

उन्होने एक प्रतिष्ठा पाठका भी निर्माण किया है, उसमें मूर्ति निर्माण, मन्दिर निर्माण, मूर्तिआकार मन्दिराकार वगैरेके साथ संपूर्ण प्रतिष्ठा विधान है।

मूर्तिनिर्माण, मुहूर्त, स्थानशुद्धि, मन्दिरनिर्माण विधि आदि विधानमें सर्वत्र उन्होने क्षेत्रपाल, दशदिक्पालक, तिथि-देवता, भूमिदेवता आदिकी पूजाका विधान किया है, उन सबका उद्धरण यहांपर हम नहीं देते हैं, तथापि जिनबिंब प्रकरणका आचार्य देवने प्रतिपादन किया हैं, उसका उद्धरण देना यहां आवश्यक है। जिनबिंब निर्माणका विधान करते हुए निम्न-लिखित प्रकरण पठनीय है, किसी बन्धुने लिखा कि उपलब्ध प्रतिष्ठा पाठोमें वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ सर्व प्राचीन है, उसमें शासनदेवतावोंका उल्लेख नहीं है, अथवा मूर्तिके पार्श्वमें यक्ष और यक्षीके निर्माणका विधान नहीं है, उनसे भी हमारा अनुरोध हैं कि वे इस प्रकरणको ध्यान पूर्वक देखें, उन्हे समझमें आवेगा कि वसुनन्दि सिद्धांत चक्रवर्तिका भी क्या अभिप्राय है?

जिनबिंब निर्माण प्रकरण

यक्षं च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासनदेवतां।
लांछनं पादपीठाधः स्थापयेद्यद्यथा भवेत् ॥१२॥
चतुर्भुजः सुवर्णाभो गोमुखो विहवाहनः।
वामेन परशुर्द्वं ते बीजपूराक्षसूत्रकम् ॥१३॥
वरदानपरं सम्यक् धर्मचक्रं च मस्तके।
स्कंधाग्र गोमुखो यक्षः आदिदेवस्य दक्षिणे ॥१४॥

निरूपण किया है। साथ में इसी ग्रंथ में त्रैवर्णिक आचार विधान भी है। इस ग्रंथ का आधार उत्तरवर्ति अनेक ग्रंथकाकारोंने लिया हैं। सो यह निश्चित है कि उस समय यह ग्रंथ सबको मान्य रहा है।

इस ग्रंथमें अंकुरारोपण विधिसे लेकर सर्व प्रतिष्ठा विधान मे स्थान स्थानपर दिक्पालक, क्षेत्रपाल, चतुर्विंशति यक्ष, चतुर्विंशति यक्षिणी आदिका आव्हान किया हैं, और पूजनका भी विधान हैं।

उदाहरण के लिए देखिये :-

" ओ ऱ्हीं क्रों प्रशस्तवर्ण सर्वलक्षणसंपूर्णस्वायुधवाहन वधूचिन्हसपरिवारा यक्ष, वैश्वानर राक्षस नधृत पन्नगासुर सुकुमार पितृविश्वमालिन् चमर वैरोचन महा विद्यमार विश्वेश्वर पिंडाशिन्यः पंचदशतिथिदेवता आगच्छेत आगच्छत स्वाहा स्वधा, " पूजामंत्रः।

इसके ऊपर इन तिथि देवताओं का उल्लेख इस प्रकार हैं।

तद्बाह्येपि लिखेद्वृत्तं मंडलं शुभलक्षणं
तत्र स्थाप्याः क्रमात्पचदशापि तिथिदेवताः ।
यक्षो वैश्वानरोरक्षो नधृतः पन्नगोऽसुरः
सुकुमारः पिता विश्वमाली चमर विश्रुतिः ।
वैरोचनो महाविद्यामारो विश्वेश्वराव्हयः
पिंडाशी चेति ताः प्रोत्मा: देवताः प्रतिपन्मुखाः ।

इसी प्रकार चोवीस शासन देवतावोंका भी उल्लेख ग्रंथकारने जो किया है वह भी देखियेगा।

समस्त प्रतिष्ठा शास्त्रों के सारभाग का संग्रह कर मैंने इस प्रतिष्ठातिलक की रचना की है, इसलिए जैसे अनेक सुगंध द्रव्यों का सार-तत्व निकालकर एकत्रित करने पर वह महान सुगंध होता है, उसी प्रकार सर्व प्रतिष्ठा शास्त्रों में-यह प्रमुख प्रतिष्ठातिलक माना जाता है, यह ग्रंथकारने जो कहा है समुचित है।

प्रतिष्ठा विषय को प्रतिपादित करनेवाले इस महत्वपूर्ण ग्रंथ का अवलोकन कीजिये।

सकलीकरण के बाद नांदीमंगल विधान है। नांदीमंगल में सर्व प्रथम पंचकुमार देवों की पूजा है, नंतर दिक्‌पाल अर्चन है। उसमें इंद्र को आव्हान करते हुए निम्न लिखित श्लोक है।

उद्यं गं शारदभ्रमुभ्रमुदितावस्त्रज्जुरपाहिरनम्
तं विन्ध्याभ्रमुवल्लभं हिमदुवाकृव प्रसादिश्रितन् ।
वंशोल्लिखित पाणिमप्रतिहतान् स्वर्वविभ्राजितन्
इन्द्रा संवृतमाह्वयानि महतामिन्द्र जिनेन्द्राध्वरे ॥

प्रतिष्ठातिलक-१=

इस में प्रतिष्ठा सदृश महान कार्य में कोई प्रकारका विघ्न नहीं आवे इस उद्देश से दश दिक्‌पालकों को आव्हान किया जाता है। उन्हें यथास्थान आकर विराजमान होने के लिए निवेदन किया जाता है, इस श्लोक में इंद्र दिक्‌पालक का आव्हान है। इसी प्रकार अग्नि, यम नैऋत्य, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान धरणेंद्र व चंद्र को भी आव्हान किया गया है।

इसी प्रकार आगे जाकर यक्ष, यक्षी, एवं ब्रह्मदेव की भी पूजा की गई है। यक्ष पूजाका मंत्र यह है।

जरा इस प्रतिष्ठा पाठके पृष्ठ नं. १०१-१०२ निकालकर देखियेगा।

अब यहां विशेष विधि है सो वर्णन करिये है।

चतुर्णिकायामरसंघ एवं
आगत्य यज्ञे विधिना नियोगम्
स्वीकृत्य भक्त्या हि यथार्हदेशे
सुस्था भवंत्वाह्निककल्पनायाम् ॥३२२॥

प्रथम चतुर्निकायका जिनभक्त देवका समूह जे इहां यज्ञमें आय विधिपूर्वक अपना नियोगनै अंगोकार करि भक्तिकरि यथायोग्य स्थानमें तिष्ठकरि नित्य सेवामें सावधान हो ॥३२२॥

उपर्युक्त कथनमें जिनभक्त देवका समूह, विधिपूर्वक अपना नियोगने अंगोकार करि, यह पद ध्यानमे लेने योग्य हैं। चतुर्णिकायामर देवों के समूह मे जिनभक्त देवोंका ही यहां स्मरण किया जाता है, यह निश्चित हुआ।

विधिपूर्वक उनका नियोग क्या है? जयसेन आचार्य ने उसका उल्लेख नहीं किया है, जब उन्होंने उसको विधी नहीं बतलाई है या उसमेंसे निकाली गई है या सुतरां सिद्ध हो जाता है कि उसकी विधि अन्य प्रतिष्ठा ग्रंथोमें जो प्रतिपादन किया है वह उनको मान्य है, इसलिए उन्हें इस प्रसंगमे उन्होंने स्मरण किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि शासन देवो देवतावों की आराधना इस प्रतिष्ठा कारको भी मंजूर है।

आगे जरा और देखिये,

वायुकुमार देवका आव्हान इस प्रकार किया है।

आयात मारुतसुराः पवनोद्भटाशाः
संघट्टसंलसितनिर्मलतांतरिक्षाः
वात्यादिदोषपरिभूत वसुंधरायाम्
प्रत्यूहकर्मनिखिलं परिमार्जयन्तु ॥३२३॥

[illegible] वायुकुमार आदिके देव [illegible] पवनकरि उ[illegible]
[illegible] शमित निर्म[illegible]
[illegible] आदि दोष क[illegible]
[illegible] शुद्धि करो, यहां आवो
इस अर्थ को विचारणा के संबंधमें हमें कुछ भी कहना नहीं
है, कदाचित् यह विचारणीय होगा, परन्तु इतना ही कहना है कि
प्रतिष्ठाकारको इस पूजा विधान में आए संबंधी विघ्नोंको दूर
करने के लिए वायुकुमार देवको बुलाना इष्ट था, सो वायुकुमार
को बुलाकर उन विघ्नोंको दूर करने केलिए कहा है, और यथा
स्थान बैठनेके लिए कहा है, परंतु सोचनेकी बात यह है कि
यह वायुकुमार देव किसीका नौकर तो नहीं है, जिनेंद्र भगवान्
का वह भक्त होगा, परंतु एक श्रावकको क्या अधिकार है कि
वह उसे आज्ञा देवे, इसलिए अन्य प्रतिष्ठाकारोने जो विधिपूर्वक
आदर के साथ उन देवोंको बुलानेका विधान किया है, वही
सही है। इस ग्रंथकारको भी यह मान्य है, परंतु वे कारणवश
स्पष्टीकरण नहीं कर सके ।

इसी प्रकार आगे वास्तुकुमार, मेघकुमार, अग्निकुमार, नागकुमार देवोंका भी आव्हान किया हैं। यथास्थान बैठनेका संकेत किया गया हैं, अंतमे यह कहकर उपसंहार किया हैं कि-

इति जिनभक्तितत्पर वास्तुकुमार यथायोग्यस्थाने
निवेशनाय पुष्पांजलि क्षिपेत् मंडपोपरि ॥

ऐसे जिनभक्तिमे तत्पर वास्तुकुमार देवताकू यथा योग्य स्थान का सन्निवेशनिमित्त वेदीमंडल ऊपरि पुष्पांजलि क्षेपणी।

इसी प्रकार कुमुदादि चतुर्द्वारपालकोंको भी बुलाकर यथास्थान उनको स्थापना की गई है।

इस पर हम अधिक टीका टिप्पणी नहीं करना चाहते हैं।
… इसका ध्येय व रहस्य अच्छीतरह समझ सकते हैं।
आगे पृष्ठ १३७ जरा देखियेगा।
… प्रतिष्ठाहोममें आहुति देते समय अंतमें यह मंत्र
… गया है।

… सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्य निर्वाण पूजार्ह अग्नींद्र स्वाहा,
…फलं पट्परमस्थानं भवतु, अपमृत्युविनाशनं भवतु, समाधि-
…रणं भवतु।

…इसी पीठिका मंत्रसे भी भलीभांति ज्ञात होती है। होम
…धान मे अग्नींद्र की आराधना आवश्यक बतलाई गई है।
… यागमंडल की पूजामें चोवीस तीर्थंकरों की जो पूजा की
…ई है उसमें भगवान् पार्श्वनाथ की पूजा है, वह निम्नलिखित
…कार है।

काशीपुरीशनृपभूपणविश्वसेन,
मैत्रप्रियं कमठशाठ्यविखंडनेन,
पद्माहिराजविबुधव्रजपूजनांकं,
वंदेर्चयामि शिरसा नतमौलिनीतः ।।५१७।।

…यहांपर हमें सिर्फ यह बताना है कि भगवान् पार्श्वनाथके
प्रति शठताके साथ कमठने जो उपसर्ग किया उसे धरणेंद्र
पद्मावतीने दूर किया। इसे कुछ बंधु पंथमोहवश स्वीकार
नहीं करते हैं। परंतु जयसेनाचार्य को यह मान्य था।

पृष्ठ २३२ में इंद्राणी या शची की स्थापना का विधान
है। इंद्राणीकी स्थापना आदरपूर्वक होगी या अनादर पूर्वक ?
ग्रंथकारने उसकी स्थापना का प्रयोग नहीं बतलाया है, वह
प्रयोग विधि अन्य प्रतिष्ठापाठसे ही जानना चाहिये, इसलिये

धरणेंद्र अर चंद्र अपनी अपनी दिशामें स्थिति करते भये, सर्वं सर्वज्ञ देवके भक्त अर अनादिकालतें अपना नियोगमें निपुण तथा अन्य भी द्वादश इंद्र और असंख्यात देव देवांगना उस उत्सवमे अपना शरीर में परमआनंदसे प्राप्त होते भये ।।७६८।।

इस श्लोकमे दो पद विशेष ध्यान देने योग्य हैं । जिसका उल्लेख टीकाकारने नो किया है । एक तो सर्वे सर्वज्ञभक्ताः अर्थात् ये सर्व जिनेंद्र भगवंत के भक्त हैं, दूसरी बात अधिकृत रूपसे अनादि कालसे अपने अधिकारमे नियत हैं, सो यह श्रेय अन्य देवोंको नहीं मिल सकता है, इन में विशेष योग्यता होनेसे ही उस स्थानमें आकर ये जन्म लेते है, एवं तीर्थंकरोंके पंच कल्याणक अवसरोंमे सेवा करते हैं, ऐसी स्थितिमे आदर पूर्वक उन्हे बुलाकर अर्घ्य चढानेमे आपत्ति क्यों होनी चाहिये ?

परिनिष्क्रमण कल्याण के प्रकरणका अवलोकन कीजियेगा । पृ. नं. २६० मे लिखा है ।

पूर्वं लोकांतिका देवाः कल्प्या अष्टौ सुबुद्धयः
श्रुतांबुनिधिपारज्ञाः धीराः सदुपदेशने ।
जयसेन प्रतिष्ठापाठ ।।७९९।।

इहां पूर्वं आठ संख्यावाले सुबुद्धि अर शास्त्रसमुद्रके पारगामी अर समीचीन उपदेशमे धीरवीर ऐसे लोकांतिक देव कल्पना करने योग्य है ।।७९९।।

इस श्लोकमे सुबुद्धि, शास्त्रसमुद्रके पारगामी और समीचीन उपदेशमे धीरवीर ये तीन पद महत्वके हैं, इससे इन लोकांतिक देवोंका सम्यग्दृष्टि होनेमे कोई संदेहकी बात नहीं है। वैसे भी ये ब्रम्हलोक स्थित ब्रह्मर्षि लोकांतिक देव एक भवावतारी होते हैं, इनका वर्णन करते हुये आचार्य पूज्यपाद निरूपण करते हैं कि,-

परन्तु उन्हे उतना ही इष्ट नहीं था,वे और भी देवी देवतावों के आव्हानका संकेत इस श्लोकों से करते हैं, उन सब का विसर्जन करने का विधान इससे करते हैं, और उनको भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर नमस्कार करने का संकेत भी करते हैं। इससे विषय स्पष्ट होजाता है।

आज-कल एक नई विचार धारा भी प्रवाहित होरही है कि तीर्थंकर अथवा देवगुरु शास्त्रों का आव्हान व विसर्जन नहीं किया जाता है, क्योंकि वे न आते हैं और न जाते है, (ॐ) ऐसा कुछ लोग कहते हैं, उन लोगों के मतानुसार भी उपर्युक्त विसर्जन फिर किसका? स्पष्ट है कि देवी देवतावोंको जो आव्हान किया था उन्हीका विसर्जन है। अर्थात् देवी-देवतावों का आव्हान उनको मान्य है, इस विसर्जनका यह अर्थ लिया जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं हैं,शासनदेवी देवतावोंका विरोध करनेवाले लोगोंकी मान्यता इससे सिद्ध नहीं होपाती है।

अब हम इस प्रतिष्ठा पाठकी प्रशस्ति के आधारसे रचना व काल के संबंधमें थोडा विचार करते है, जिससे स्वाध्याय प्रेमी बंधुवों को विषय समझने में सुविधा होगी।

अथ प्रशस्तिः

कुंदकुंदाग्रशिष्येण जयसेनेन निर्मितः।
पाठोयं सुधियां सम्यक् कर्तव्या यास्तु योगतः ॥६२३॥

(ॐ) यद्यपि हमें यह विधान मान्य नहीं है, तथापि आज लोग जो भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं, उससे उन्हीं के मन्तव्यसे नई आपत्ति खडी होजायगी, इसे बतलाने के लिये हमने यह लिखा है, इससे सरल विषयको स्वीकार करना अच्छा है।

अर आचार्य गुरु परिपाटी कहे हैं - कि मैं कुंदकुंद नाम
महान् मुनिवरका पट्टधारी शिष्य जयसेन नामकने रचा, ऐसा
यह पाठ सम्यग्बुद्धिधारीनिके योगसे करने योग्य है ॥६२२॥

इस से आचार्य जयसेन कुंदकुंद आचार्य की परंपरामें
हुए हैं, ऐसा ज्ञात होता है। कुंदकुंद आचार्य के साक्षात् शिष्य
नहीं है, तथापि कुंदकुंदकी आम्नायपरंपरा उन्हें मान्य है।

आगे अपने देशका वे परिचय देते है।

श्री दक्षिण कुंकुणनाम्नि देशे
सह्याद्रिणा संगतसीम्निपूते
श्रीरत्नभूध्रोपरि दीर्घचैत्यं
लालाट्टराज्ञा विधिनोर्जितं तत् ॥६२४॥

श्रीमान् दक्षिण दिशामें कुंकुणनाम (कोंकण) देशमें
सह्याचल करिसमीप सीमावारा पवित्र श्रीरत्नगिरी(रत्नागिरी)
ऊपरि जिनेन्द्र चंद्रप्रभ का बडा उन्नत चैत्यालय लालाट्टनाम
राजाका बनाया हुआ है ॥६२४॥

अर्थ स्पष्ट है, दक्षिणभारतांतर्गत कोंकण प्रांतमें रत्ना-
गिरी आज भी विद्यमान है, वहांपर चंद्रप्रभ दि. जैन मंदिर भी
विद्यमान है, इसलिए विशेष विचार की आवश्यकता नहीं है।

आगे लिखते हैं कि, —

तत्कार्यमुद्दिश्य गुरोरनुज्ञा-
मादाय कोलापुरवासि हर्षात्
दिनद्वये संलिखितः प्रतिज्ञा-
पूर्त्यर्थमेवं श्रुतसंविधत्ति ॥६२५॥

अर वहां प्रतिष्ठा होने का उद्देश करि गुरु जो कुंदकुंद
ते (?) तिन की आज्ञा पाय कोल्हापुर नगर में रहनेवाले

राजाका हर्ष ते प्रतिज्ञापरिपूर्तिनिमित्त इस शास्त्र का रचनेका विधान है।

इस श्लोक को देखनेपर विषयपर अच्छा प्रकाश पडता है, श्लोक में गुरू की आज्ञासे इतना ही पद पडा है, परंतु टीकाकारने कुंदकुंद का नाम उसमें जोडदिया है। अब रही बात रचना की, दो दिनमे इसकी रचना कोलापुरवासी राजाकी प्रतिज्ञापूर्ति के लिए की गई।

विचारणीय विषय यह है कि उस समय अन्य प्रतिष्ठा विधायक शास्त्र प्रचलित नहीं थे क्या? दो दिन में इस प्रतिष्ठापाठ को बनाने की आवश्यकता क्यों पडी? दो दिन में अगर यह शास्त्र लिखा गया है तो पूर्वाचार्योंके ग्रंथके आधार से लिखा गया है, या जयसेन आचार्य के स्वकपोलकल्पनासे लिखा गया है? जैनाचार्यों की वह परंपरा नहीं हैं। वे कभी भी स्वतंत्र-स्वकपोल कल्पनासे कोई भी ग्रंथ रचना नहीं कर सकते हैं। दो दिन में इतने बडे ग्रंथ की रचना की है तो उसमे कुछ न्यूनता का आभास होसकता हैं या नही? सबसे बडा प्रश्न तो यह खड़ा होजाता है कि अन्य संहितावों के सद्भाव में दो दिन में इसके रचना करने की गडबडी क्यों हुई? यह सब प्रश्नार्थक आज भी उत्तररहित है।

स्व. डॉ. उपाध्ये के कथनानुसार यह जयसेन नरेन्द्रसेनकी परंपरा मे हुए है, नरेन्द्रसेन के द्वारा रचित एक प्रतिष्ठापाठ है, जिसमे शासनदेवतावों के समादरका विधान है। जयसेन यदि उसी परंपरा में हुए तो अपनी गुरु परंपराके अनुसार ही प्रतिपादन करते, उस परंपराके विरुद्ध प्रतिपादन करनेका कोई कारण नहीं है।

हम अधिक ग्रंथोंका इसलिए उल्लेख नहीं करते है कि सारे जैनागम इस विषय से भरा पडा है। जो शासन देवता के समादर का विरोध करते हैं, उनकी एक ही युक्ति हो सकती है कि ये सब ग्रंथ अप्रमाण है। हमारा कहना है कि किन किन ग्रंथों को आप अप्रमाण घोषित करते है? कृपया सूची प्रकाशित कीजिये, आप जिनको प्रमाण घोषित करते हैं, उनमें ही हम विषय का प्रतिपादन दिखादेंगे, मात्र चरणानुयोग या प्रथमानुयोग संबंधी वह आगम हो।

दूसरी बात इतनी लंबी चौडी परंपराके सभी ग्रंथों को अप्रमाण करार देनेसे क्या आपत्ति उपस्थित होजायगी वे स्वयं विचार करे, फिर तो प्रमाणभूत जैनागम कुछ शेष नहीं रहेगा।

इस प्रकरण से मूर्ति निर्माण की परंपरा व शासनदेवों की मान्यता की परंपरा हमारे आगमो में क्या रही, और किस प्रकार कहां हमारे आगमो में उसका उल्लेख है, इस बात का अच्छीतरह स्पष्टीकरण होजाता है।

इसके अलावा वे देव सम्यग्दृष्टी होते हैं। हम सम्यग्दृष्टि हैं या नहीं इसकी शंका ही है। हम सम्यग्यदृष्टि होनेका प्रदर्शन करते हैं। इसलिए उनका आदर सत्कार यथायोग्य करनेमें कोई हानि नहीं है। अपने माता पिताका हम आदर करते हैं। विद्या गुरु का आदर करते हैं। तीर्थंकरोंके समान जानकर उनका आदर नहीं होना चाहिये।

इसके लिए हमने सोमदेव यशस्तिलक वगैरे का प्रमाण दिया है, आजसे हजार वर्ष पहिले भी शासनदेवतावोंका आदर होता था, इसकेलिए वहीं प्रमाण पर्याप्त है।

[३] शासनदेव सम्यग्दृष्टी होते हैं।

सौधर्मेंद्र, लोकपाल, शची महादेवी, ईशानेन्द्र, लोकांतिक व सर्वार्थसिद्धिके देव वहांसे च्युत होकर मानवपर्याय को प्राप्त कर मुक्तिको जाते हैं। जब उनको दूसरे भवसे मुक्ति निश्चित है तो वे सम्यग्दृष्टि जीव हैं। ❀

सम्यग्दृष्टि जीव ही जिनेन्द्र की भक्तिसे आराधना कर सकते हैं। पंचकल्याणक अवसरो में उपस्थित होकर वे देवेन्द्रादिक तीर्थंकरों की अनवरत सेवा करते हैं।

उस सौधर्मेंद्र के द्वारा अवधिज्ञानसे उनकी योग्यताको जानकर उन देवी देवतावों को शासन देवता के पदमें नियुक्त किया जाता हैं, वे निश्चित ही शासनभक्त हैं।

तीर्थंकरो के तीर्थंकर मंदिरों की विविध उपसर्ग के अवसरपर शासनदेव रक्षा करते हुए आये हैं। जैनधर्म की प्रभावना को विशेष रूपसे वे करते आये हैं। एवं उसे चाहते हैं, उनकी नियुक्ति परमागममें शासन की रक्षा के लिये देवेंद्रने की हैं। सो निश्चित रूपसे वे सम्यग्दृष्टी जीव हैं। उनके अन्दर जबतक सम्यग्दर्शन न हो तबतक देवेन्द्र शासनकी सेवा के लिए उनकी नियुक्ति नही कर सकता है।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से स्पष्ट है कि [illegible]करके [illegible] वाम पार्श्व मे रहने का उन्होने भाग्य प्रा[illegible] वे निश्चित रूपसे सम्यग्दृष्टि जीव हैं य[illegible] वे दूसरे भव से मुक्तिको जाते हैं।

❀ सोहम्मो वरदेवी वक्खिणरिंदाय
लोयंतिय सव्वट्ठो तदो चुदो

[४] शासनदेवतावोंके प्रभावके कुछ उदाहरण

जैनागम मे सर्वत्र इस विषय के उदाहरण उपलब्ध हैं। परन्तु जहां जिस क्षेत्रमें सातिशयता है, वहां तो अवश्य ही इन देवी देवतावों का प्रभाव देखनेमे आता है।

आचार्य भूतबली पुष्पदंत

आचार्य धरसेनने भूतबली व पुष्पदंतको मंत्र सिद्ध करने के लये दिया, परंतु एक में एक बीजाक्षरकी न्यूनता और एक मंत्र मे एक बीजाक्षरकी अधिकता थी, उन मंत्रों को अधिष्ठात्री देवतायें प्रकट हो गईं, प्रार्थना करने लगी कि हम आप की क्या सेवा करें।

उन साधुवोंने कहा कि हमें आपसे कोई काम नही है। परन्तु देवतावो के आकारमें यह विकृति क्यों? जिसमे एक अक्षर की न्यूनता थी वह देवता एकाक्षिणी (कानी) थी, जिसमे एकाक्षर अधिक था वह देवी तीन आंखवाली थी, फिर दोनोंने बीजाक्षरको ठीक समझकर जप किया तो दोनो देवीयां सुंदर रूपमें उपस्थित हुईं। गुरुसे दोनोंने निवेदन किया, वे ही धरसेन आचार्य के चूर्णिसूत्रका विस्तृत करनेमें समर्थ हुए।

इससे मालुम होता है कि बीजाक्षरोंमें अचित्य शक्ति है। देवीदेवता उन बीजाक्षरों के प्रभाव से वशीभूत होते हैं। इच्छित फल को देते हैं।

आचर्य कुंदकुंद

आचार्य कुंदकुंद देवने गिरनार पर्वतपर विधर्मियों से शासनदेवीकी सहायतासे किस प्रकार विजय को प्राप्त किया यह सर्वजन विदित है। उसके चरित्रसे इस विषयको जाना जा सकता है।

इस चमत्कार को देखकर राजा शिवकोटि भी आश्चर्यचकित हुआ। चार हजार शिवभक्तों के साथ जिनभक्त हुआ। अंतमें तपश्चर्या करते हुए आचार्य शिवकोटिके नामसे प्रसिद्ध हुए एवं भगवतीआराधना ग्रंथ की रचना की।

आचार्य अकलंक

अकलंक निष्कलंक चरित्र प्रसिद्ध है, बौद्ध गुरुवोंके द्वारा स्थापित तारादेवी की खबर आचार्य अकलंकने शासनदेवी की सहायतासे ही ली एवं जिनशासन की अपूर्व माहात्म्यको बताया।

न्यायशास्त्रवेत्ता विद्यानंदि

आचार्य का जन्म जैनेतर कुल में हुआ, न्यायशास्त्र के अद्वितीय वेत्ता थे, मात्र जिनमंदिरसे जानबूझकर बहुत दूर से निकलते थे। कर्म-धर्म संयोगसे एक पार्श्वनाथ मंदिर के निकटसे जानेका मौका मिला, कोई स्वाध्यायप्रेमी देवागम स्तोत्र का पठन कर रहा था, हेतुके लक्षणमें सन्देह पैदा हुआ, रातभर अस्वस्थ रहे, विद्वानोंका यही काम है। थोडी देर झपकी लगी तो प्रातःकाल उठकर मन्दिरमें पहुंचे। भ. पार्श्वनाथ की फणामणि में लिखा हुआ था।

> अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
> नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्?
> अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पंचभिः।
> नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पंचभिः

जहां अन्यथानुपपन्नत्व है, वहां हेतुका त्रैरूप्य और पांच रूप्यसे क्या प्रयोजन है। जहां अन्यथानुपपन्नत्व नहीं है वहांपर त्रैरूप्य और पांचरूप्य का प्रयोजन क्या है? इसलिए जैन सिद्धां[त] का लक्षण अन्यथानुपपन्नत्व माना गया है।

उससमय मेघकेतुनामक देव अपने इन्द्रके साथ सकलभूषण केवलीके केवलज्ञान कल्याणमें जारहा था, इन्द्र की आज्ञासे मेघकेतु वहां रुक गया, सीतादेवीके अग्निप्रवेश करनेपर उस अग्निको जलमय बनाकर सीतादेवीको उस सरोवरमें सिंहासन पर बैठा लिया। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवोंके प्रति शासनदेव भी अनुग्रह करते हैं एवं धर्मका प्रभाव वहांपर बताते हैं।

अकिवाटके विद्याधरस्वामी

दिल्ली दरबारमें चर्चा हुई कि आप जैन लोग अपने धर्म की उच्चताको सिद्ध करो, नहीं तो तुम जैन सभी मुसलमान बन जावो, नहीं तो मरणदंडके लिए तयार होजावो। मुगल साम्राज्य था, वहांपर विरोधमें कौन बोल सकते हैं।

दिल्लीके जैनबन्धु कोल्हापूर भट्टारकजीके पास आये। कोल्हापूरके भट्टारकने उन्हें अकिवाट विद्याधरजीके पास भेजा जो मन्त्रतन्त्रमें प्रवीण थे। उन्होंने दिल्लीके जैन बन्धुवोंसे सब प्रसंग सुना, और कहा कि घबरावो मत, जो भवितव्य होगा सो होजायगा।

दिन बीतनेमें देरी नहीं लगती, विद्याधर दिल्ली जानेका नाम नहीं लेते हैं। जैनबन्धु घबरा रहे हैं, आखिर छह महिनेमें एक दिन बाकी रहा, तब फिर जैनबन्धुवोंने गिडगिडाया, गुरुदेव, कल हमने दिल्लीमें सिद्ध नहीं किया कि हमारा जैन धर्म श्रेष्ठ है तो हमारे बालबच्चोंपर बेलन फिरेगा, तब भी उनका उत्तर निश्चित था कि घबरावो मत!

रातको एक दरीपर सोये हैं। प्रातः उठते समय दिल्लीमें है, गुरुदेव सामने ही हैं। गुरुदेव पालकीपर चढकर दरबारमें गये परन्तु पालखी ढोनेवाला कोई नहीं है। दरबारमें जाकर भी अन्तरिक्षमें आधाररहित खडे हैं।

मुगल बादशाहको यह देखकर आश्चर्य हुआ। जैनधर्मकी [illegible], जैनके अतिशयके संबन्धमें अनेक प्रश्नोत्तर दरबारमें हुए, विद्याधरने सबका समाधान किया। मुगल बादशाह उनके ज्ञानसे बहुत प्रभावित हुआ।

राजाने प्रार्थना की कि रनिवासमें रानियोंको भी आपश्रीके महाराजका दर्शन हो, यह हमारी प्रबल इच्छा है। परन्तु विद्याधर नग्न थे, उन्होंने नग्नअवस्थामें ही वहांपर जानेकी इच्छा प्रकट की, परन्तु बादशाहका बहुत बड़ा आग्रह रहा कि आप थोड़ी देरके लिए कपड़ा धारण करलेवें। उस आग्रहके वश होकर विद्याधरने कपड़े पहन लिये। तबसे भट्टारकोंमें अन्य अनेक आचरण मुनियोंके समान होनेपर भी कपड़ा पहननेकी प्रथा चालू होगई।

विद्याधर भट्टारकने मन्त्रसिद्ध किया था। मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवीकी आराधना की थी, तभी तो वह उनके इष्टार्थको पूर्ण करती थी।

इस प्रकारके उदाहरण बहुतसे पड़े हैं। लोग विश्वास करे या न करे मन्त्रसाधनसे एवं भगवन् जिनेन्द्रकी भक्तिपूर्वक उपासनासे ये सभी देवी-देवतायें वशमें होती हैं। एवं उस भक्तके इष्टार्थ को पूर्ण करती हैं। (A)

आज भी इस पंचम कालमें यत्र-तत्र इन देवीदेवताओंका चमत्कार देखनेमें आता है। श्री महावीरजी, पद्मप्रभुजी, हूमच पद्मावती, सिंहनगदे, आदिस्थानोंमें यह शासनभक्त व्यंतर

(A) विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥
दर्शनपाठ

…वदेवताओंकी भक्तिपूर्वक उपासना कर अपने … पर
…ते हैं। और अकिवाटके विद्याधरके समान वे शासनभक्त
…विश्वासपूर्ण चमत्कार दिखानेमें समर्थ हो जाते हैं।

समादरके लिए अन्य ग्रन्थोंका प्रमाण

हरिवंशपुराण सर्ग ४३। १४२। १४३

करुणावानसौ योगी योगं संहृता सुस्थितः।
क्षेत्रपालवृत्तं ज्ञात्वा तमाह विनयस्थितम्॥
क्षम्यता यक्ष दोषोयमनयोरनयोद्भवं।
कर्मप्रेरितयोः प्रायः कुरुकारुण्यमंगिनोः॥

करुणाके धारक मुनिराज अपना योग समाप्त कर
…व विराजमान हुए तब उन्होंने यह सब क्षेत्रपालके द्वारा
…कया जाना जानकर विनयपूर्वक बैठकर क्षेत्रपालसे कहा कि
…क्ष यह इनका अनीति से उत्पन्न दोष क्षमा कर दिया जाय,
…र्मसे प्रेरित इन प्राणियोंपर दया करो १४२। ४३

हरिवंश पुराण ९। १३१

योऽसौ विद्याधराधारो विजयार्द्ध इतीरितः
सोपि ताभ्यां ततोलब्धः किन्न स्मादगुरुसेवया।

विद्याधरोंका निवास भूत विजयार्ध नामका पर्वत
…, वह भी उन दोनोंने (नमि-विनमि) धरणेंद्रसे प्राप्त किया
…सो ठीक ही है क्योंकि गुरु सेवासे क्या नहीं होता है?

हरिवंश पुराणके अन्तमे यह कहा गया है कि सज्जनोंके हितैषी जो शासनदेव ओर शासनदेवियां सदा चौवीस तीर्थंकरोंकी सेवा करती हैं उनसे भी मैं याचना करता हूं कि वे सदा जिनशासन के निकट रहे । चक्ररत्नको धारण करनेवाले अप्रति चक्र देवता तथा गिरिनार पर्वतपर निवास करनेवाली सिंहवाहिनी अंबिकादेवी जिस जिनशासनमें सदा कल्याणके लिए सन्निकर रहती है उस जैनशासनपर विघ्नोंका प्रभाव कैसे हो सकता है ?

हितके कार्यमें मनुष्योंको विघ्न उपस्थित करनेवाले जो ग्रह, नाग, भूत, पिशाच, राक्षस आदि हैं, वे जिनशासन के भक्त देवोंके प्रभावसे शान्तिको प्राप्त हो जाते हैं ।

हरिवंश पुराण

मंगलाष्टकमे इन शासनदेवी देवताओंका स्मरण व उल्लेख किया गया है ।

अनेक देवी देवता अष्ट मंगल द्रव्य आदि लेकर तीर्थंकरोंके पंचकल्याणके समय सेवा करते हैं ।

प्रतिष्ठा—सारोद्धार ग्रन्थमें इन शासन देवदेवियोंका आव्हान है और जिनबिंब निर्माण विधान किया गया है उसे भी देखना चाहिये ।

पांडव पुराणमें शासनदेव देवियोंका आव्हान किया गया है ।

वसुनन्दि प्रतिष्ठामें मूर्ति निर्माण करनेका विधान देखना चाहिये ।

इसी प्रकार प्राचीन मूर्तियां जहां तहां भी उपलब्ध हैं वे सब यक्ष यक्षियोंसे सहित ही होती हैं ।

१० वें शतमानसे पहिलेकी मूर्तियां जितनी भी …लती हैं उनमें यक्ष यक्षी सहित ही मूर्तियां मिलती हैं। …उसे यह प्रथा बहुत प्राचीन है यह स्पष्ट अर्थ होता है।

रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराणमें मुनिसुव्रतनाथ के …नय जो जिनमन्दिर थे उनका वर्णन है। उसमें जो मन्दिर … उनमें शासनदेवतायें थी इसका विवेचन है।

मल्लिषेणकृत पद्मावती कल्प, ज्वालामालिनी कल्प …विमानुशासनमे जगह जगह पर शासनदेवी देवतावोंका …व्हान है।

इसी प्रकार दिगम्बरोंमे ही नहीं, श्वेतांबर आगम में … सर्वत्र शासनदेवी देवतावोंका आहवान है। इसलिए …ल दिगम्बर सम्प्रदायको ही यह मान्य नहीं है। महावीर …त अन्य शाखाको भी यह मान्य है यह स्पष्ट हुआ। …चार्य भद्रबाहु व स्थूलिभद्रसे उपदेश इसका मिला है यह …ष्ट है।

इसलिए विरोधियों द्वारा उपस्थित युक्ति विचार …न योग्य नहीं है। आगम तो उनके पास है ही नहीं।

जैनागममें अनेक स्थानोंपर शासन देवतावोंका उल्लेख … उनके चमत्कारोंका उल्लेख है, साधुवोंके द्वारा भी …की विनय की गई, इसका भी उल्लेख है। अनादरका …लेख कहीं भी नहीं है।

(६) विरोधियोंकी युक्तियां

विरोधीगण शासन देवतावोंका अनादर करनेवाले …र २ लोगोंको बहकाते हैं कि वीतराग जिनेन्द्रदेव ही पूज्य …। शासनदेवता पूज्य नहीं हैं।

पूजा शब्दके अर्थको प्रतिपादन कर हमने इस ग्रन्थमें अच्छी तरह सिद्ध किया है कि जिनेन्द्रकी पूजा व शासनदेवतावोंकी पूजा एक प्रकारसे नहीं होती है। मन्त्र विधि, प्रयोग आदि सभी भिन्न हैं। शासन देवतावोंके समादरका विधान है। सो इस सम्बन्धमें प्रमाणको ध्यानमें लेते हुए विरोधियोंकी युक्तियां किसी कामकी नहीं हैं। विरोधियोंका जोर आचार्य समन्तभद्रके श्लोकपर है। तथा अहूती ये पुरा देव इस विसर्जन श्लोक पर है किसीसे भी उनको यथायोग्य आदरसत्कार करनेका निषेध नहीं होता है प्रत्युत पुष्टी मिलती है।

(७) यह मिथ्यात्व नहीं है।

इसीसे अच्छी तरह सिद्ध होता है कि यह कार्य मिथ्यात्व नहीं है। अगर उन शासनदेवतावोंसे हमने कुछ कामना की तो सम्यक्त्वमें बाधा देनेवाली देवमूढता हो सकती है। यदि कामना न कर उनका सत्कार किया जाय तो हमारे सम्यक्त्वमें मलिनता नहीं आ सकती है। हमने उसके लिए भी भरपूर प्रमाण इस ग्रन्थमें दिया है। उसपर भी विचार करना चाहिये। सम्यक्त्व क्या है, मिथ्यात्व क्या है इसका विचार करनेपर अपने आप विषय समझमें आवेगा कि यह मिथ्यात्व नहीं है।

(८) आनुषंगिक विषय.

शासनदेवतावोंका आदर करना चाहिये। किसी भी हालतमें उनका अनादर नहीं करना चाहिये। इस संबंध

को लिखते हुए तत्संबंधी अनुषंगिक विषय व प्रमाणको उपस्थित किया है । उनपर हमें विचार करना चाहिये ।

प्राचीन प्रतिमायें यक्षयक्षीसहित ही क्यों होती हैं ।

यक्षयक्षीरहित मूर्ति कौनसे शतमानसे बनने लगी ?

मूर्ति शास्त्रका अध्ययन करनेपर हमें इस विषयका अच्छी तरह ज्ञान हो जाता है ।

इस संबंधमें हम जैन प्रतिमाविज्ञान खण्ड १ श्री बालचन्द्र जैन एम्. ए. साहित्य शास्त्री उपसंजयक पुरातत्व संग्रहालय मध्यप्रदेश, जबलकर द्वारा लिखित पढनेके लिए सूचना देते हैं जिसमें प्रतिमाके लक्षणके साथ मूर्ति कैसी होनी चाहिये इसका सचित्र उल्लेख है ।

इसके अलावा डेहके श्री सेठ डुंगरमलजीने डेहसंबंधी शासनदेवता चमत्कारके विषयमें इस पुस्तकमें सम्मिलित करने के लिए जो लेख भेजा है वह पठनीय है ।

श्री शासनदेवीदेवताके चमत्कार

संकलन- डूंगरमल सबलावत, केकड़ी

पूर्वाचार्य- आचार्योंने कहा कि—शासनदेवता जिनधर्म के रक्षक है। मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा आई हुई आपत्तियोंको दूर करते है। जिनधर्म के प्रभावको प्रगट करनेवाले है मानतुंग, समन्तभद्र, कुन्दकुन्द, विद्यानन्द, अकलंक; वादिराज सुदर्शन सेठ; महाकवि धनंजय आदि विशेष महापुरुषोंकी अवसरानुसार सहायता की है इससे जाना जाता है कि वे धर्मात्मा पुरुषोंकी अवसरानुसार सेवा भी करते है। इसलिये सादर विनयके योग्य है।

प्रश्न—शासनदेवता किसलिये पूजे जाते है ?

उत्तर—जिन शासनकी रक्षाके लिये। प्रतिष्ठादि कार्योंमें अनेक प्रकारके अशुभ देवादिकोंके द्वारा उपद्रवोंके किये जाने कि सम्भावना रहता है। इसलिये शासनदेवता उनके निवारण करनेके लिये नियोजित है। इसीसे जिनदेवके साथ-साथ उनका भी उनके योग्य सत्कार किया जाता है।

प्रश्न—जब वे शासनके रक्षक है धर्मात्मा है तो स्वयं रक्षा करेंगे हो इसमें उनके पूजनेकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर—आवश्यकता क्यों नही, जब प्रतिष्ठादि कार्योंमे छोटेसे छोटे का यथोचित सत्कार किया जाता है फिर यह तो जिन धर्मके भक्त और शासनके रक्षक है इसलिये अवश्य सत्कारके पात्र है। जो जैनी लोग छोटेसे छोटे और मुसलमानादिकोंका मन माना सत्कार कर डाले और जो खास

जिनधर्मके भक्त तथा रक्षक हैं उनकी यह दशा। जो विचारे थोडेसे सत्कारके लिये तरसे। यह तो हम भी कहते है कि यदि वे जिनधर्मके सच्चे भक्त होंगे तो जिनशासनकी रक्षा करेगे ही, परन्तु यह तुम्हे भी तो योग्य नही जो त्रैलोक्यनाथके साथमें रहनेवाले खास अनुचरोंका असत्कार कर डालें पुराणादिकोंमें सैकडों जगह यह बात लिखी हुई मिलेगी कि अमूक राजाके दूतका अमुक नृपतिने यथेष्ट सत्कार किया किया तथा हम लोगोंमें भी यह बात अभी भी अचलित है कि हमारे यहां आये हुए अतिथिके सत्कारके साथमें उनके साथ में आए हुए मृत्यवर्गोका सत्कार किया जाता है फिर जिनदेव के सेवक वर्गोने ही क्या बडा भारी पाप किया है जिससे वे सत्कारके पात्र ही नही रहे।

जब प्रतिष्ठादि कार्य शासन देवताओं विना भी चल सकते होते सो कही प्रतिष्ठादि विधियोंमें देखा नही जाता; क्या चक्रवर्ती सम्यकदृष्टि नही होते ? क्यों उन्हे चक्ररत्नकी पूजनादि करना पडता है। विधादिकोंके साधनमें क्यो देव-ओंका आराधन किया जाता है ? क्या वे सब जैन धर्मके पालन करनेवाले विद्याधर लोग मिथ्यादृष्टि होते थे ? जैन मतमें नव देवता पूजने लिखे हैं उनमें जैन मंदिर भी गर्भित है। क्यों ? जैन मन्दिर भी पत्थर और चूनोंका ढेर हैं ? उसके पूजनसे क्या फल होगा, उसी तरह समवशरण तथा सिद्ध क्षेत्रादिकोंका भी पूजन किया जाता है यह क्यों ? अरे तुम्हारे कथानुसार केवल जिनदेव ही पूजने चाहिये। कदाचित् कहीं यह कहना अनुचित है क्योंकि जिन मन्दिर समवशरण तथा सिद्धक्षेत्रादिकोंका जो पूजन करते हैं । उसका कारण

यह है कि उनमें जिन भगवान् विराजे हैं । अर्थात् यो कहों कि—

साद्विरध्युषिता धात्री पूज्या तत्र किमद्भुतम् ॥

अर्थात्—जिस जगह पर महात्मा लोग विराजते हैं अर्थात् जिस जगहसे वे निर्वाण स्थान को पाते हैं वह उन्होंके माहात्म्यादिका सूचक है इसलिए जिनमन्दिरादि भी पूज्य हैं। यह महात्मा पुरुषोंका माहात्म्य है कि जिनके आश्रम से छोटीसी छोटी भी वस्तु सत्कारके योग्य हो जाती है। यदि यहीं कहना है तो फिर शासनदेवता सत्कार के योग्य क्यों नहीं है उन्होंने क्या. जिनदेवका आश्रय नहीं पाया है क्या वे जिन धर्मके धारक भक्त नहीं हैं ऐसे कहनेका कोई साहस करेगा ? कदाचित् कहीं कि जिनदेवके शासनको एक छोटी जातीका मनुष्य भी मानने लग जाय तो क्या उसके साथ भी वैसा ही सत्कारादि करना चाहिए जैसा और भाईयोंका किया जाता है ? अवश्य । उसमे हानि क्या है ! जैन भावनोंमें यदि वह जैन मर्मका अनुयायी है तो अवश्य सत्कार का पात्र है। जैन शास्त्रोंमें हजारो ऐसी कथायें मिलेगी कि छोटी छोटी जातीके मनुष्योंने संयम धारण किया है तो क्या वे सत्कारादिके पात्र नहीं कहे जा सकते, यह केवल भ्रम है ?

भगवज्जिनसेनाचार्य आदि पुराण में—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवतः शांतिहेतवे ।
क्रूरास्तु देवता हेया यासां स्याद्वृत्तिरामिसैः ॥

अर्थात्— विश्वेश्वरादि शासनदेवता शांतिके लिए माननें योग्य हैं और जो मांससे जिनकी वृत्ति है ऐसे क्रूर देवता है वे त्यागने योग्य हैं।

जो अर्थ शास्त्रोंसे मिलता हुआ किया गया है वह तो झूठा बताया गया और जो वास्तवमें झूठा और जैन शास्त्रोंसे बाधित है वह आज सत्य माना जा रहा है। क्या कोई परीक्षक नहीं है जो सत्य और झूठ को अलग करके बता दे, ठीक तो है जहां शास्त्रोंको ही प्रमाणता नहीं है। उस जगह बिचारा परीक्षक भी क्या कर सकेगा?

प्रश्न— यह कैसे माना जाय कि आदि पुराण का श्लोक अन्य मति देवताओंके लिए निषेधक है?

उत्तर—इसमें और प्रमाणोंकी आवश्यकता ही क्या है खास वह श्लोक ही कह रहा है कि— जिनकी मांससे वृत्ति है वे क्रूर देवता त्याज्य है और अन्य मतियोंमे देवताओंके लिए मांस बलि आदिका व्यवहार प्रत्यक्ष देखा जाता है। इसलिये स्पष्ट है कि यह अन्य देवताओंके लिए ही निषेध है। जिन शासनदेवता तो मांसादि व्यवहारसे दूर रहते हैं। वे शांतिके लिए ही होते हैं ऐसा आचार्योंने स्पष्ट किया है।

प्रश्न—पूज्य तो जिन भगवान् को छोडकर और कोई नहीं हो सकता। फिर शासनदेवता पूज्य कैसे कहे जा सकेंगे? कदाचित् कहीं कि शासनदेवता जिनशासक के रक्षक हैं तथा धर्मात्मा लोगोंकी सहायता करते हैं, इसलिए वे पूजनके योग्य है? परन्तु यह भी भ्रम है, क्योंकि जिन पूजनसे विघ्नोंका नाश हो सकेगा शासन देवताओंके पूजनकी क्या आवश्यकता है?

शास्त्रोंमें कहा भी है—

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी भूतपन्नगाः ।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ।।

उत्तर— यह तो सत्य है कि जिन भगवानको छोडकर इस संसारमे जैनियोंके लिये दूसरा कोई पूज्य नहीं है, और न हमारा यह कहना है कि जिनदेवकी उपासना छोडकर शासनदेवता ही पूजे जावे परन्तु यहां पर पूजनका जैसा अर्थ समझा जाता है वैसा शासनदेवताओंके विषयमें कहना नहीं है। पूजनका अर्थ सत्कार है वह सत्कार अधिकरणकी अपेक्षा से अनेक भेदरूप हैं। माता, पिता का सत्कार उनके योग्य किया जाता है। पढानेवाले विद्यागुरुओंका सत्कार उनके योग्य किया जाता है। इसी तरह अपनेसे बडे, मित्र, बन्धु, मुनि; श्रावक आदि का उनके योग्य सत्कार करना उचित है; इसे ही सत्कार कहो; विनय कहो; या पूजन कहो ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इसी प्रकार जिन भगवान तथा शासन देवताओंका सत्कार भी यथायोग्य उचित है। इससे यह ता नहीं कहा जा सकता कि- शासनदेवता सत्कारके ही योग्य नहीं है। हां; यह बात तब उचित कही जाती जब शासन देवता और जिन भगवानको पूजन का विधान समान कर देते।

विश्वेश्वर शब्दका विवेचन अनेक ग्रंथोंमे है।

पूजा सार-इन्द्रनन्दि स्वामि कृत—

यक्षो वैश्वानरो रक्षोऽनाहत पन्नगासुरौ ।
सुकुमारमिथान च पितर विश्वमालिनम् ॥
चमरं रोचन देवं महाविद्यं स्मर तथा ।
विश्वेश्वरं च पिंडाशं तिथिदेवान्समाहये ॥
(तिथि देवता-मालामन्त्रः)

अर्थात्— यक्ष; वैश्वानर; राक्षस; अनाहत, पन्नग, असुर, सुकुमार, पिता, विश्वमाली, चमर, रोचन, देव, महाविद्य, विश्वेश्वर, तथा पिंडाश इन तिथिदेवताओंका आव्हान करता हूं ।

इन्द्रनन्दि संहिता में—

मनुष्य भी आपके अनुग्रहसे पूजा को प्राप्त होता है । शासनदेवता दोषी नहीं हैं किंतु प्रणिधान पूर्वक विचार करनेसे यह बात सहज अनुभवमें आ सकेगी कि शासन देवता किसलिए सत्कारादिके पात्र हैं ।

ज्वालामालिनी कल्पमें लिखा है कि—

सम्यक्त्वद्योतका यक्षा दुष्टदेवापसारिणः ।
सम्मान्याविधिवद्भूव्यैः प्रारब्धेज्यादि सिद्धये ॥

अर्थात्—सम्यक्त्वके उद्योत करनेवाले और दुष्ट देवोंके दूर करनेवाले शासनदेवता आरम्भ किये हुए प्रतिष्ठादि

महोत्सवोंमें यथायोग्य भव्य पुरुषोंको मानने चाहिये ।

जिनदेवकी पूजन विधिके अन्तमें विसर्जन करते समय में विसर्जन पाठमें इस तरह पढ़ा जाता है कि–

आहूताये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम् ।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥

पूजनकी आदिमें जिन जिन देवताओंका मैंने आव्हा-नादि किया है । भक्ति करके पूजा (सत्कार) को प्राप्त किया सभी अपने अपने स्थानमें जावे ।

और भी शासनदेवताओंका आदि पुराणमें सम्बन्ध है । इसलिये शासनदेवता सादर विनयके योग्य हैं ।

वर्धमान पुराणके १२ वे अधिकार में—

लभन्ते हि यथा यक्षा जिनांघ्रिपद्मजा श्रयान्महत् ।
तथा नीचा मनुष्याश्च पूजा तव प्रसादतः ॥

अर्थात– जिस तरह इस संसारमे यक्षादि देवता तुम्हारे चरण कमलोंके आश्रय से पूजाको प्राप्त होते हैं इसी तरह हुये, सब देवता अपने योग्य पूजनके भागको ग्रहण करके अपने अपने स्थानको जावें । इस श्लोकमें 'यथाक्रमं लब्धभागा' 'यथास्थितिम्' आदि पद ऐसे पड़े हैं जिनसे स्पष्ट शासन देवतादि का बोध होता है ।

प्रश्न– इन पदोंसे जिनदेव से भिन्न भी कोई और देवता प्रतीति होते हैं परन्तु जिनदेवसे अन्य साधु आचार्य सरस्वती आदिका ग्रहण कर लेंगे फिर तो किसी तरहका विवाद नहीं रहेगा ?

उत्तर—यह कहना उचित नहीं है क्योंकि श्लोक में–
" आहूता ये पुरा देवा " अर्थात्– जो देवता मुझ करके आव्हान किये गये हैं, इसमें देव शब्द, पडा हुआ है। साधु, आचार्यादिक को देव शब्द से आव्हान्न नहीं किए जाते, इसलिये वास्तवमें शासनदेवताओंका ही ग्रहण है।

इन्द्रनंदि संहिता में–

देवदेवार्चनार्थं ये समाहूता श्चतुर्विधाः।
ते विधायाऽर्हतां पूजां यान्तु सर्वे यथायथम्॥

पूर्व श्लोक में— " ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या " यह पद हैं इसका तात्पर्य भक्तिसे अर्थात्– विनय पूर्वक ही होता है। जिसमें भक्ति नहीं फिर उसका सत्कार ही क्या होगा। भक्तिका यह अर्थ नहीं कि– जिन भगवान पूजे जाते हैं वैसे ही शासनदेवता भी, इसीसे श्लोक में "लब्धभागा यथाक्रमम्" शब्दकी सार्थकता है।

यशस्तिलक मे अभिषेक विधि में–

योगेऽस्मिन्नाकनाथ, ज्वलन पितृपते नैगमेय प्रचेतो।
वाया रे देश रोषोद्रुप सपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्राः॥
मन्त्रैर्भूः स्वः सुधाधैरधिगत वलयः स्वासु विक्षूपविष्टाः
क्षेपोयः क्षेमदक्षाः कुरुत जिनसवोत्साहिनं विघ्नशांतिम्

" शास्त्रसार समुच्चय " श्री माघनंद्याचार्यकृत टीकाकार आ० श्री देशभूषणजी महाराज देव मूढता प्रकरण में–

आत्मशुद्धि के लिये संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिये सर्व कर्म कलंक से छूटने के लिए वीतराग देवाधिदेव को ही पूजा उपासना करनी चाहिये, अन्य किसी देवको नहीं।

धार्मिक तथा लौकिक सत्कारसे सहायता सहयोग प्राप्त करने के लिए जिनेन्द्र भक्त यथा पद्मावती आदि सम्यग्दृष्टि देवोंका भी साधर्मिक वात्सल्य भावना से उचित आदर सत्कार करना चाहिए जैसा कि प्रतिष्ठा आदि के समय करते हैं परन्तु आत्म शुद्धिका कारण न समझना चाहिए और न अर्हंत सिद्ध देवाधिदेवके समान पूजना चाहिए।

माननेवालोंके लिए तो दिग्दर्शन मात्र उपयोगी होता है और न माननेवालोंके लिए तो चाहे सिद्धांत पुराण भी खोलकर क्यों न रख दिए जाय वे तो हठ ग्राहिता से तथा पंथमोह से क्यों हो ?

जिन प्रतिमाका लक्षण- जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय में—

प्रातिहार्याष्ट को पेता यक्षयक्षी समन्विताम् ।
स्वस्वलांच्छन संयुक्ता जिनार्चा कारयेत्सुधीः ॥

अर्थात्- जो आठ प्रातिहार्योंसे सुशोभित है, यक्ष यक्षी सहित हैं और अपने अपने चिन्होंसे सुशोभित हैं ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानोंको बनवानी चाहिए।

वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ—

यक्ष च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासन देवताम् ।
लांच्छनं पाद पीठाद्यः स्थापयेद् यस्य मद्भवेत् ॥

अर्थ—जिन प्रतिमाके दाईं ओर यक्ष की मूर्ति होनी चाहिए बाईं ओर शासनदेवता अर्थात्—यक्षी की मूर्ति होनी चाहिए और सिंहासनके नीचे जिन की प्रतिमा हो। उनका चिन्ह होना चाहिए।

कारयेदर्हतो विम्ब प्रातिहार्य समन्वितम्।
यक्षाणां देवतानां च सर्वालंकार भूषितम्॥
स्ववाहना युधोपेतं कुर्यात्सर्वांग सुन्दरम्।

अर्थ—जिन प्रतिमा आठ प्रातिहार्य सहित होनी चाहिये। ये यक्ष यक्षी समस्त अलंकारोंसे सुशोभित होने चाहिये अपने अपने आयुध और वाहन सहित हो तथा सर्वांग सुंदर हो।

त्रिलोकसार में- टीकाकार- पं. टोडरमलजी

सिंहासणादि सहिया विणीय कुन्तल सुवज्जमय पंता।
विदुम हरदा किसलय सोहायर हत्थमायत तजा॥
सिरी देवी सुअ देवो सव्वापासण कुमार जक्खाणं।
रूवाणि जिणया से मंगल दुविह मावि होई॥

अर्थ—जिन प्रतिमाके निकट इन चारिनका प्रतिबिंब होई है।

प्रश्न— जो श्री देवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी हैं इसका प्रतिबिंब कैसे होई है?

उत्तर—श्री और सरस्वती ये दोऊ लोकमें उत्कृष्ट हैं ताते इनका देवांगनाका आकार रूप प्रतिबिंब होई है। बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त हैं ताते तिनके आकार ही है। आठ मंगल द्रव्य हों।

आत्मशुद्धिके लिये संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिये सर्व कर्म कलंक से छूटनेके लिए वीतराग देवाधिदेव की ही पूजा उपासना करनी चाहिये, अन्य किसी देवकी नहीं।

धार्मिक तथा लौकिक सत्कार्यो सहायता सहयोग प्राप्त करने के लिए जिनेन्द्र भक्त यक्ष पद्मावती आदि सम्यग्दृष्टि देवोंका भी साधर्मिक वात्सल्य भावना से उचित आदर सत्कार करना चाहिए जैसा कि प्रतिष्ठा आदि के समय करते हैं परन्तु आत्म शुद्धिका कारण न समझना चाहिए और न अर्हंत सिद्ध देवाधिदेवके समान पूजना चाहिए।

माननेवालोंके लिए तो दिग्दर्शन मात्र उपयोगी होता है और न माननेवालोंके लिए तो चाहे सिद्धांत पुराण भी खोलकर क्यों न रख दिए जाय वे तो हठ ग्राहिता से तथा पंथमोह से क्यों हो ?

जिन प्रतिमाका लक्षण- जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय में—

प्रातिहार्याष्ट को पेता यक्षयक्षी समन्विताम् ।
स्वस्वलांच्छन संयुक्ता जिनार्चा कारयेत्सुधीः ॥

अर्थात्- जो आठ प्रातिहार्योंसे सुशोभित है, यक्ष यक्षी सहित हैं और अपने अपने चिन्होंसे सुशोभित हैं ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानोंको वनवानी चाहिए।

वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ—

यक्ष च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासन देवताम् ।
लांच्छनं पाद पोठाद्यः स्थापयेद् यस्य यद्भवेत् ॥

अर्थ—जिन प्रतिमाके दाईं ओर यक्ष की मूर्ति होनी चाहिए बाईं ओर शासनदेवता अर्थात्—यक्षी की मूर्ति होनी चाहिए और सिंहासनके नीचे जिन की प्रतिमा हो । उनका चिन्ह होना चाहिए।

कारयेदर्हतो विम्ब प्रातिहार्य समन्वितम् ।

यक्षाणां देवतानां च सर्वालंकार भूषितम् ॥

स्ववाहना युधोपेतं कुर्यात्सर्वांग सुन्दरम् ।

अर्थ-- जिन प्रतिमा आठ प्रातिहार्य सहित होनी चाहिये। ये यक्ष यक्षी समस्त अलंकारोंसे सुशोभित होने चाहिये अपने अपने आयुध और वाहन सहित हो तथा सर्वांग सुंदर हो ।

त्रिलोकसार मे- टीकाकार- पं. टोडरमलजी

सिंहासणादि सहिया विणोय कुन्तल सुवज्जमय पंता।

विदुम हरदा किसलय सोहापर इत्थमायत तजा ॥

सिरी देवी सुअ देवो सव्वापासण कुमार जक्खाणं ।

रूवाणि जिणया से मंगल दुविह मावि होई ॥

अर्थ—जिन प्रतिमाके निकट इन चारिनका प्रतिविंब होई है ।

प्रश्न- जो श्री देवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी हैं इसका प्रतिविंब कैसे होई है ?

उत्तर-- श्री और सरस्वती ये दोऊ लोकमें उत्कृष्ट हैं ताते इनका देवांगनाका आकार रूप प्रतिविंब होई है। वहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त हैं ताते तिनके आकार हो है। आठ मंगल द्रव्य हों ।

राजा चामुण्डरायने श्री नेमिनाथ के चैत्यालयमें बहुत ऊंचा स्तम्भ खड़ा किया, उसपर यक्षदेवकी मूर्ति स्थापित की है ऐसा वह चामुण्डराय राजा सदा जयवंत हो।

गोम्मट संगहसुत्तं, गोम्मटसिहरुवरि गोम्मट जिणोय।
गोम्मटरायविणीम्य दक्खिण कुक्कुडजिणो जयउ।।
जेणुब्भियथम्मुवरिम जक्खतिरीटग्ग किरण जल धोया
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयऊ ।। ५३ ।।

राजा चामुण्डरायका भी श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती जैसे परम दिगम्बर आचार्य महाविद्वच्छिरोमणि ने सम्मान किया।

" जो सो राओ गोमटो जयऊ " इस वाक्य से जयतु शब्द से प्रकट है, इस शब्दके प्रयोगसे यक्ष देवकी मूर्ति स्थापित करना निमित्त व्यंजित होता है।

क्या राजा चामुण्डराय मिथ्यादृष्टि था? वह यक्ष कुदेव था?

जो जिनेन्द्र भगवान के बताये हुए मार्गके विरुद्ध प्रचार करे.... वही कुदेव है और जो जैसा जिनागममें बताया हुआ मार्ग है उसी का उसी रूपसे प्रचार कर धर्म प्रभावना करे, उसमें सहयोग दे वह कैसे कुदेव हो सकता है।

जो शासनदेव जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमाओंके आस पास यक्ष यक्षिणी रूपमें ऐसी मूर्तियां प्राचीन मन्दिरों, तीर्थ

स्थानों गोम्मटेश्वर बाहुबली बडवानी, खण्डगिरी, उदयगिरी आदि बहुतसे मन्दिरोंमें मणिभद्र, पूर्णभद्र, पद्मावती देवी, चक्रेश्वरीदेवी आदि की प्रतिमामें विराजमान हैं।

भ: पार्श्वनाथको प्रतिमाये हर जगह फणासहित हैं क्या वह धरणेन्द्र युक्त नहीं है? फिर कैसे शासनदेवोंको कुदेव कहा जा सकता है। हम यह नहीं कहते हैं कि— शासनदेव हमारे तरण तारण हैं। उनके पदानुसार उनका सन्मान किया जाता है और करना चाहिये आज भी यही व्यवहार है।

शासनदेवों, देवियों द्वारा जैन धर्मकी महान् प्रभावना हुई और होती रहेगी।

कई प्रांतोंमें अन्ध विश्वास, अन्ध श्रद्धा जमी हुई थी कि क्षेत्रपाल पद्मावती आदि कुदेव हैं नहीं मानना चाहिये परन्तु कहनेवाले सज्जन ही प्रतिष्ठादि अवसरों पर शासन देवताओंका आदर सत्कार करते देखे गये।

स्व० चन्द्रसागरजी, आ० वीरसागरजी, आ० शिवसागरजी एवं आ० महावीरकीर्तिजी का ससंघ चारो तरफ विहार किया तब श्रावकोंका कर्तव्य तथा शासनदेवता सम्यग्दृष्टि हैं धर्म तथा धर्मात्माओंपर आपत्ति याने कुदेवों द्वारा उपद्रव अशांति करने पर निराकरण कहते हैं इसलिए शासन देवताओंका यथावत आदर सत्कार करना चाहिये जिससे इच्छित कार्य की सफलता मिलती है तथा आई हुई आपत्ति टल जाती है।

वि० सं० २०१५ में महान तपस्वी आचार्य श्री महावीर कीतिजी महाराज डेह मे पधारे। करीवन एक मास ठहर कर फिर नया मन्दिर से विहार कर पुराना (वीस पंथी) मन्दिर में दर्शनार्थ गये, श्रावकों जैन जनता ठहरने के लिए प्रार्थना की तब आचार्य श्रीने उसी समय सारगर्भित भाषण दिया—

'यहांसे मेरी भावना विहार करनेकी निश्चितरूप से थी; परन्तु यहां का चमत्कारी क्षेत्रपाल विहार करनेसे मुझे रोक रहा है, फिर करीबन एक मास ठहरकर काफी जीवोंका कल्याण कर सत् मार्गका दिग्दर्शन कराया।'

शासनदेवताओं एवं धरेणेन्द्र पद्मावती आदिको कोई भी श्रावक भगवान् समझ कर इनको पूजा नहीं करता है। सभी श्रावक उन्हे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टि जानते हैं, परन्तु वे भगवान् के परम श्रद्धावान हैं उनका चरण सेवामें सदैव तत्पर रहते हैं। धर्मकी रक्षा करते हैं, ऐसी अवस्थामें श्रावक उनको साधर्मी समझ कर वात्सल्य भावसे आदर सत्कार करता है जैसे घर पर जवाई का आदर सत्कार किया जाता है किंतु साथमे आनेवाले जवाई के नाई का भी सत्कार किया जाता है और जो भोजन जवाई को खिलाऐं जाते हैं वही नाई को भी खिलाया जाता है परन्तु नाईका सत्कार होने पर भी उसे जवाई रूपमें कोई नहीं मानता है।

स्थानों गोम्मटेश्वर वाहुवली वडवानी, खण्डगिरी, उदयगिरी आदि वहुतसे मन्दिरोंमें माणिभद्र, पूर्णभद्र, पद्मावती देवी, चक्रेश्वरीदेवी आदि की प्रतिमामें विराजमान हैं ।

भः पार्श्वनाथको प्रतिमाये हर जगह फणासहित हैं क्या वह धरणेन्द्र युक्त नहीं है ? फिर कैसे शासनदेवोंको कुदेव कहा जा सकता है । हम यह नहीं कहते हैं कि— शासनदेव हमारे तरण तारण हैं । उनके पदानुसार उनका सन्मान किया जाता है और करना चाहिये आज भी यही व्यवहार है ।

शासनदेवों, देवियों द्वारा जैन धर्मकी महान् प्रभावना हुई और होती रहेगी ।

कई प्रांतोंमें अन्ध विश्वास, अन्ध श्रद्धा जमी हुई थी कि- क्षेत्रपाल पद्मावती आदि कुदेव हैं नहीं मानना चाहिये परन्तु कहनेवाले सज्जन ही प्रतिष्ठादि अवसरों पर शासन देवताओंका आदर सत्कार करते देखे गये ।

स्व० चन्द्रसागरजी, आ० वीरसागरजी, आ० शिवसागरजी एवं आ० महावीरकीर्तिजी का ससंघ चारो तरफ विहार किया तब श्रावकोंका कर्तव्य तथा शासनदेवता सम्यग्दृष्टि हैं धर्म तथा धर्मात्माओंपर आपत्ति याने कुदेवों द्वारा उपद्रव अशांति करने पर निराकरण कहते हैं इसलिए शासन देवताओंका यथावत आदर सत्कार करना चाहिये जिससे इच्छित कार्य की सफलता मिलती है तथा आई हुई आपत्ति टल जाती है ।

वि० सं० २०१५ में महान तपस्वी आचार्य श्री महावीर कीतिजी महाराज डेह मे पधारे। करीवन एक मास ठहर कर फिर नया मन्दिर से विहार कर पुराना (चौस पंथो) मन्दिर में दर्शनार्थ गये, श्रावकों जैन जनता ठहरने के लिए प्रार्थना की तव आचार्य श्रीने उसी समय सारगभित भाषण दिया—

' यहासे मेरी भावना विहार करनेकी निश्चितरूप से थो;. परन्तु यहां का चमत्कारी क्षेत्रपाल विहार करनेसे मुझे रोक रहा है, फिर करीवन एक मास ठहरकर काफी जीवोंका कल्याण कर सत् मार्गका दिग्दर्शन कराया । '

शासनदेवताओं एवं धरेणेन्द्र पद्मावती आदिको कोई भी श्रावक भगवान् समझ कर इनको पूजा नहीं करता है । सभी श्रावक उन्हे चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यग्दृष्टि जानते हैं, परन्तु वे भगवान् के परम श्रद्धावान हैं उनका चरण सेवामें सदैव तत्पर रहते हैं । धर्मकी रक्षा करते है, ऐसी अवस्थामें श्रावक उनको साधर्मी समझ कर वात्सल्य भावसे आदर सत्कार करता है जैसे घर पर जवाई का आदर सत्कार किया जाता है किंतु साथमे आनेवाले जवाई के नाई का भी सत्कार किया जाता है और जो भोजन जवाई को खिलाएँ जाते हैं वही नाई को भी खिलाया जाता है परन्तु नाईका सत्कार होने पर भी उसे जवाई रूपमें कोई नहीं मानता है ।